ज़ेन सूत्र

(द टीचिंग्स ऑफ ज़ेन)

आर. के. चंद्रवंशी

ज़ेन सूत्र

(द टीचिंग्स ऑफ ज़ेन)

लेखक: आर. के. चंद्रवंशी

संस्करण : 2025
द टीचिंग्स ऑफ ज़ेन

समर्पण

यह पुस्तक उन सभी को समर्पित है जो अपने जीवन में शांति और सच्चाई की तलाश में हैं। हर कहानी मौन की गूंज है, जो हमें याद दिलाती है कि जीवन का सबसे गहरा सत्य हमारे अपने अनुभवों में छिपा है। उन भटकते हुए मन को समर्पित है जो अपने भीतर के शांत सरोवर में अपना प्रतिबिंब देखना चाहते हैं। ये कहानियाँ सिर्फ़ पढ़ने के लिए नहीं हैं, बल्कि इनमें उतरने के लिए हैं, ताकि आप अपने भीतर के मौन से मिल सकें। यह पुस्तक, जिसमें हर कहानी एक प्रश्न की तरह है, उन सभी को समर्पित है जो जानते हैं कि जीवन का सबसे बड़ा ज्ञान अक्सर मौन और अनुभव में ही पाया जाता है। हर शब्द एक संकेत है जो आपको अपनी यात्रा पर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है।

कथा सूची

१. मन का बोझ : फा-येन
२. व्यर्थ का महत्व : च्वांग- त्सु
३. समान बल का प्रयोग : लाओत्सू
४. क्रोध एक अतिथि : ज़ेन कथा
५. चाय का प्याला : सुज़ुकी रोशी
६. अंतिम संदेश : तन्जेन रोशी।
७. रिक्त पात्र : नान-इन।
८. करुणा की मूर्ति : क्वानइन
९. जीवन जीने की कला : लाओत्सू।
१०. चोर और फ़कीर : झेन कथा।
११. अच्छा-बुरा कुछ नहीं : ताओ कहानी।
१२. एक शब्द का सार : रिंझाई"।
१३. समय का रहस्य : मार्शल आर्ट्स गुरु
१४. सरलता का जादू : बैंकेई"।
१५. जीवन का सार : ज़ेन गुरू।
१६. मौन का प्रवचन : रिंझाई।
१७. शोर में मौन : शोईची।
१८. सत्य का धैर्य : हाइकुन।
१९. प्रश्न से परे : ज़ेन गुरू।
२०. तर्क और अनुभव : च्वांगत्सु और हुई शि।
२१. स्वार्थ और निस्वार्थ : ज़ेन कथा।
२२. बुद्ध की प्रतिमा : ओ- ओका।
२३. छिपा हुआ सत्य : ज़ेन कथा।
२४. सांसारिक सुखों का भ्रम : ज़ेन कथा।
२५. तुम दूसरी ओर हो : ज़ेन कथा।
२६. गुरु शिष्य का सम्बन्ध : सुज़ुकी रोशी
२७. सबसे आसान हल : तई और लाओत्सू।
२८. श्रेष्ठता या संतुलन : लाओत्सू
२९. स्वर्ग और नर्क : नोबुगिशी और हाकुइन।
३०. जीवन का अटल सत्य : सेंगई।
३१. वस्त्र नहीं व्यक्ति : इक्ववक्कू।
३२. घमंड बनाम ध्यान : ज़ेन गुरू।
३३. जीवन एक सराय : ज़ेन महात्मा।
३४. सबसे बड़ा दान :रियोकान।
३५. मानसिक बोझ : तन्जेन और एकीदो।
३६. नश्वरता का बोध : रायोकान।
३७. हर चीज का अंत: इकक्यु।
३८. अपनी समझ पर विश्वास : लाओत्सू।
३९. जीवों की समानता : च्वांगत्सु।
४०. पूर्वाग्रह-जनित सोच: लाओत्सू।
४१. लम्बी उम्र का रहस्य : कंफ्यूशियस।
४२. तलवारबाज : माताजुरो याग्यू और बाँजों।
४३. स्वर्ग का आनंद : जुआन।

४४. संतुलन का पाठ : मोकुसेन।
४५. जेनसूत्रों की अमूल्य पुस्तक : तेत्सुगेन।
४६. अमरता का रहस्य : च्वांगत्सु"।
४७. आनंद के चार कारण : लाओत्सू
४८. काली नाक वाले बुद्ध : ज़ेन कथा
४९. ज्ञान की कसौटी : च्वांगत्सु
५०. संतुष्टि का सुख : च्वांगत्सु
५१. ध्यान की परीक्षा : ज़ेन फ़कीर
५२. चार प्रकार के लोग: तिब्बती कहावत
५३. एक ताओवादी कहानी
५४. श्रद्धा बनाम अहंकार"मारपा और गुरु)
५५. अहंकार की खोपड़ी:महात्मा च्वांगत्सु
५६. न्याय: एक क्रांतिकारी दर्शन: लाओत्सु
५७. मछली पकड़ने का सबक
५८. गुरु को दक्षिणा के मोती
५९. बोधिधर्म और चीन के सम्राट वू
६०. तीन हंसते हुए फकीर
६१. बोधिधर्म और सम्राट वू
६२. लाओत्सु का उपहास और ज्ञान
६३. परम शांति की खोज
६४. बोलने वाला मुर्गा
६५. श्रम का मूल्य"
६६. लाओत्सू की वाणी"
६७. तिब्बती संतुलन की कहानी"
६८. इक्का और बुद्ध की मूर्ति"
६९. ज़ेन गुरु रिंज़ाई और जलते शास्त्र"
७०. रेंड़ाई और जिज्ञासु की यात्रा"
७१. लाफिंग बुद्धा: होतेई और पंडित"
७२. एक नन्हे लामा: कठोरता से आत्मज्ञान तक"
७३. तिब्बत के एक फकीर: मिलारेपा"
७४. हाथी और मक्खी"
७५. एक घोड़े की कहानी"
७६. एक ज़ेन मास्टर की मृत्यु
७७. एक उंगली का ज़ेन
७८. रस्सी का टुकड़ा"
७९. एक ज़ेन मास्टर और पानी का प्याला"
८०. खाली डोंगी: ज़ेन का एक गहरा सबक
८१. ज़ेन मास्टर और उसका सबसे अच्छा शिष्य
८२. दो भिक्षु और एक बूढ़ा किसान"
८३. एक ज़ेन मास्टर और एक जिज्ञासु शिष्य
८४. ज़ेन मास्टर और बांस का तना
८५. ज़ेन मास्टर डोकेन और एक भिक्षु
८६. काम ही ज्ञान है।
८७. एक अमीर व्यापारी और एक ज़ेन
८८.. एक ज्ञानी भिक्षु का भ्रम
८९. एक ज्ञानी मास्टर का फटा लबादा"
९०. ज़ेन गुरु बाशो
९२. दो जेन शिष्य

९२. पानी के ऊपर कमल
९३. सही समय पर
९४. ज़ेन मास्टर और बूढ़ा नाविक
९५. ज़ेन मास्टर और बूढ़ा कुआँ
९६. रिंझाई: राजा और साधु की कहानी
९७. बंधन और मुक्ति का रहस्य
९८. कुत्ते की पूंछ की कहानी
९९. तीन मछुआरों की कहानी
१००.तीन चोरों की कहानी

१.“मन का बोझ”

बहुत समय पहले, चीन के एक शांत बौद्ध मठ में, फा-येन नाम के एक महान ज़ेन गुरु रहते थे। उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। उनके दो शिष्य, ली और वू, दर्शन और ज्ञान की गहराइयों में डूबे रहते थे।

एक दिन, वे दोनों वस्तुनिष्ठता और आत्मनिष्ठता के पेचीदा विषय पर बहस कर रहे थे। ली का मानना था कि हर चीज़ का अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व होता है, जबकि वू का तर्क था कि हर चीज़ हमारे मन की ही उपज है।

उनकी गरमागरम बहस सुनकर, फा-येन मुस्कुराते हुए उनके पास आए। उन्होंने बहस का विषय बदलने के लिए, पास पड़े एक विशाल पत्थर की ओर इशारा किया और पूछा, "तुम दोनों को क्या लगता है, यह पत्थर तुम्हारे मन के बाहर है या भीतर?"

ली ने तुरंत जवाब दिया, "गुरुदेव, यह तो स्पष्ट है। पत्थर यहाँ है और मेरा मन मेरे भीतर है। यह पत्थर मेरे मन के बाहर है।”
लेकिन वू, जो बौद्ध दर्शन से गहराई से प्रभावित था, थोड़ा सोचकर बोला, "गुरुदेव, बौद्ध दर्शन के अनुसार, सभी वस्तुएं मन का ही वस्तुनिष्ठीकरण हैं. इसलिए, मैं कहूंगा कि यह पत्थर मेरे मन के भीतर है।”

वू की बात सुनकर, फा-येन की आँखों में एक शरारती चमक आ गई। उन्होंने गंभीर होते हुए कहा, "अगर ऐसा है, तो तुम्हारा सिर बहुत भारी होना चाहिए!"

यह सुनकर, ली और वू दोनों असमंजस में पड़ गए। वे गुरु के गूढ़ कथन का अर्थ समझने की कोशिश करने लगे।

फा-येन ने उनकी बेचैनी को भांप लिया और समझाते हुए बोले, "अगर दुनिया की हर वस्तु, हर पहाड़, हर नदी और यह विशाल पत्थर भी तुम्हारे मन के भीतर है, तो तुम्हारा सिर इतना भारी हो जाना चाहिए कि तुम उसे उठा भी न पाओ।”

गुरु के इस उत्तर ने दोनों शिष्यों की आँखें खोल दीं।उन्हें समझ में आया कि ज़ेन दर्शन का अर्थ केवल सैद्धांतिक बहस करना नहीं है, बल्कि दुनिया को उसके सहज रूप में स्वीकार करना है।

गुरु ने उन्हें यह सिखाया कि कुछ सवालों का जवाब तार्किक बहस से नहीं, बल्कि सीधे और सरल अवलोकन से मिलता है। उस दिन के बाद, ली और वू ने अपने दर्शन का अभ्यास तर्क और विवाद से हटकर, शांति और ध्यान के माध्यम से करना शुरू कर दिया।

२.“व्यर्थ का महत्व”

एक शांत और हरे-भरे वन के किनारे, जहाँ पक्षियों का मधुर कलरव और हवा की सरसराहट हमेशा गूंजती रहती थी, च्वांग-त्सु नामक एक महान दार्शनिक का छोटा सा कुटिया था। दूर-दूर से लोग उनके ज्ञान और बुद्धिमत्ता की बातें सुनने आते थे।

एक दिन, एक चिंतित व्यक्ति च्वांग-त्सु के पास आया। उसके चेहरे पर निराशा और झुंझलाहट साफ़ झलक रही थी। उसने गहरी सांस ली और कहा, "गुरुवर, मेरे घर के आंगन में एक बहुत बड़ा वृक्ष है, जो बिल्कुल ही बेकार है।"
च्वांग-त्सु ने शांत भाव से उसकी ओर देखा।

व्यक्ति आगे कहने लगा, "इसका तना इतना कठोर और ऐंठा हुआ है कि कोई भी लकड़हारा या बढ़ई उसे काट नहीं सकता। मैंने कई कुशल कारीगरों को बुलाया, लेकिन सबने हार मान ली। उसकी शाखाएं इतनी मुड़ी हुई हैं कि उनसे औजारों के लिए हत्थे तक नहीं बनाए जा सकते। ऐसे वृक्ष के होने से क्या लाभ? वह तो बस जगह घेरे खड़ा है और मुझे हर दिन उसे देखकर निराशा होती है।"

च्वांग-त्सु ने उसकी पूरी बात ध्यान से सुनी। फिर, उन्होंने मुस्कुराते हुए पूछा, "क्या तुमने नदी में उछलने वाली मछलियां देखी हैं?"

व्यक्ति थोड़ा हैरान हुआ, लेकिन उसने उत्तर दिया, "हाँ, गुरुवर, मैंने देखी हैं। वे बहुत छोटी और चंचल होती हैं। जल पर उड़ते कीड़ों और टिड्डों को देखते ही वे लपककर उन्हें अपना शिकार बना लेती हैं।"

च्वांग-त्सु ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "और क्या तुमने कभी किसी याक को देखा है? वह कितना बड़ा और बेढब जानवर है। वह न तो खेत में काम करता है और न ही कोई और काम अच्छे से कर पाता है।"

"हाँ, गुरुवर," व्यक्ति ने कहा।

"लेकिन," च्वांग-त्सु ने अपनी आवाज़ में ज़ोर देते हुए कहा, "वही चंचल मछलियां ज्यादा समय तक जीवित नहीं रहतीं। या तो वे किसी जाल में फंस जाती हैं या फिर दूसरी बड़ी मछलियां उन्हें मारकर खा जाती हैं। दूसरी ओर, वह विशाल और बेढब याक बहुत लंबा जीवन जीता है।"

व्यक्ति अब च्वांग-त्सु की बातों का अर्थ समझने की कोशिश कर रहा था।

च्वांग-त्सु ने आगे कहा, "तुम्हारा वह वृक्ष, जिसे तुम बेकार कह रहे हो, इतना अनुपयोगी होने के कारण ही इतने लम्बे समय से खड़ा है। उसकी कठोरता और अजीब आकार ही उसकी रक्षा कर रहे हैं। कोई उसे काटना नहीं चाहता, कोई उसकी शाखाओं को तोड़ना नहीं चाहता। इसलिए वह शांति से बढ़ता जा रहा है।"

फिर, च्वांग-त्सु ने अपनी बात समाप्त करते हुए कहा, "मेरी मानो, उस वृक्ष को बेकार समझने की बजाय, उसकी शाखाओं के नीचे बैठ कर उसका ध्यान करो। उसकी स्थिरता और अनुपयोगिता में तुम्हें जीवन का एक गहरा रहस्य मिलेगा।"
वह व्यक्ति च्वांग-त्सु की बातों को सुनकर आश्चर्यचकित रह गया। उसे अपनी भूल का एहसास हुआ। वह समझ गया कि हर चीज का अपना महत्व होता है, भले ही वह तुरंत उपयोगी न दिखाई दे।

वह च्वांग-त्सु को धन्यवाद देकर वापस चला गया और उसने अपने आंगन के उस विशाल और 'बेकार' वृक्ष को नए नजरिए से देखना शुरू कर दिया। अब वह अक्सर उसकी छाया में बैठता और प्रकृति के शांत स्वभाव का अनुभव करता था।

३.“समान बल का प्रयोग”

चीन देश में एक प्रसिद्ध दार्शनिक लाओ-त्सु रहते थे। एक दिन, लाओ-त्सु के मन में मछली पकड़ने की इच्छा हुई।
अगले ही दिन, लाओ-त्सु ने मछली पकड़ने के लिए आवश्यक सामान जुटाया। फिर, उन्होंने खेत से कुछ कीड़े पकड़े और उन्हें चारे के रूप में हुक पर लगा दिया।

सुबह की सुनहरी धूप में, लाओ-त्सु नदी के किनारे पहुंचे। उन्होंने ध्यान से अपनी डोरी पानी में डाली और किनारे पर बैठकर मछली के फंसने का इंतजार करने लगे। कुछ ही देर में, उनकी डोरी में खिंचाव महसूस हुआ। एक बड़ी मछली ने उनके चारे को लपक लिया था।

लाओ-त्सु उत्साह से भर उठे। यह उनकी पहली मछली थी, और वह भी इतनी बड़ी! उन्होंने बिना सोचे-समझे छड़ी को पूरी ताकत लगाकर ऊपर की ओर खींचा। मछली भी आसानी से हार मानने वाली नहीं थी। उसने भी भागने के लिए अपनी पूरी ताकत लगा दी। दुर्भाग्य से, दोनों के बल का परिणाम यह हुआ कि लाओ-त्सु की नई छड़ी बीच से टूट गई, और वह बड़ी मछली उनकी आंखों के सामने पानी में गायब हो गई।

लाओ-त्सु निराश हो गए, लेकिन उन्होंने हार नहीं मानी। उन्होंने एक और छड़ी बनाई, इस बार पहले से थोड़ी और मजबूत। कुछ समय बाद, उनकी डोरी फिर से हिलने लगी। एक और बड़ी मछली उनके हुक में फंस गई थी।

पिछली बार की गलती को याद करते हुए, लाओ-त्सु इस बार बहुत सावधान थे। उन्होंने धीरे-धीरे और आहिस्ता-आहिस्ता छड़ी को ऊपर खींचना शुरू किया। उन्हें लगा कि इस बार वे मछली को पकड़ लेंगे, लेकिन मछली बहुत चतुर थी। उसने अचानक एक जोरदार झटका मारा और लाओ-त्सु के हाथों से छड़ी छुड़ाकर भाग गई। लाओ-त्सु अपनी टूटी हुई छड़ी और खाली हाथों को देखते रह गए।

दो बार असफलता मिलने के बाद भी लाओ-त्सु का हौसला कम नहीं हुआ। उन्होंने तीसरी बार एक नई छड़ी बनाई, जो पहले दोनों से ज्यादा मजबूत थी। कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद, तीसरी मछली ने उनके चारे में मुंह मारा।

इस बार लाओ-त्सु ने एक नई रणनीति अपनाई। जैसे ही मछली ने डोरी खींची, उन्होंने भी उतनी ही ताकत से छड़ी को ऊपर की ओर खींचा, जितनी ताकत से मछली उसे नीचे की ओर खींच रही थी। दोनों के बीच शक्ति का संतुलन बना रहा। न तो छड़ी टूटी और न ही मछली उनके हाथ से छूटी।

मछली काफी देर तक छड़ी को खींचती रही, धीरे-धीरे वह थकने लगी। जब लाओ-त्सु को लगा कि मछली कमजोर पड़ गई है, तो उन्होंने धीरे-धीरे उसे पानी के किनारे खींच लिया। इस बार वे सफल हुए। उन्होंने एक बड़ी और सुंदर मछली
पकड़ी थी। उस दिन शाम को, लाओ-त्सु ने अपने सभी शिष्यों को इकट्ठा किया और उन्होंने कहा, "आज मैंने संसार के साथ व्यवहार करने के एक महत्वपूर्ण सिद्धांत के बारे में पता लगा लिया है। यह समान बल प्रयोग करने का सिद्धांत है।"

उन्होंने आगे समझाया, "जब यह संसार तुम्हें किसी ओर खींच रहा हो, तो तुम्हें समान बल प्रयोग करते हुए दूसरी ओर जाना चाहिए। यदि तुम अत्यधिक प्रचंड बल का प्रयोग करोगे, तो तुम स्वयं नष्ट हो जाओगे।

४.“क्रोध एक अतिथि”

एक शांत बौद्ध मठ में, जहाँ हवा में चंदन की सुगंध और ध्यान की शांति घुली रहती थी, एक युवा ज़ेन शिष्य रहता था। वह बहुत ही मेहनती और समर्पित था, लेकिन उसकी एक बड़ी कमजोरी थी - वह बहुत जल्दी क्रोधित हो जाता था। क्रोध के आवेश में वह अपना आपा खो बैठता, जिससे न केवल उसे बल्कि दूसरों को भी दुख होता था।

एक दिन, अपनी इस समस्या से परेशान होकर वह अपने गुरु के पास गया, जो मठ के सबसे ज्ञानी और शांत भिक्षु थे। शिष्य ने अपनी सारी व्यथा उनके सामने रख दी।

"गुरुदेव," उसने कहा, "मैं बहुत जल्दी क्रोधित हो जाता हूँ। यह मेरी साधना में बाधा डाल रहा है और मुझे शांति से जीने नहीं दे रहा। कृपया मुझे इससे छुटकारा दिलाएं।"

गुरु ने मुस्कुराते हुए शिष्य की ओर देखा और एक अत्यंत सरल बात कही, "यह तो बहुत विचित्र बात है। मुझे क्रोधित होकर दिखाओ।"

शिष्य हक्का-बक्का रह गया। उसने सोचा कि गुरु उससे ऐसा अजीब सवाल क्यों पूछ रहे हैं। वह कुछ देर शांत रहा और फिर बोला, "गुरुदेव, मैं अभी तो यह नहीं कर सकता।"

गुरु ने उत्सुकता से पूछा, "क्यों?"

शिष्य ने जवाब दिया, "क्योंकि क्रोध अचानक आता है। मैं उसे अपनी इच्छा से नहीं बुला सकता।"

यह सुनकर गुरु की आँखों में ज्ञान की चमक दिखाई दी। उन्होंने कहा, "यदि क्रोध अचानक आता है और तुम उसे अपनी इच्छा से नहीं बुला सकते, तो यह तुम्हारी प्रकृति नहीं है। यदि यह तुम्हारे स्वभाव का अंग होता, तो तुम मुझे यह किसी भी समय दिखा सकते थे, जैसे तुम मुझे किसी भी समय अपने हाथ या पैर हिलाकर दिखा सकते हो।"

"फिर तुम किसी ऐसी चीज़ को स्वयं पर हावी क्यों होने देते हो जो तुम्हारी है ही नहीं? क्रोध एक अतिथि की तरह है जो तुम्हारे मन में आता है और चला जाता है। तुम उसे अपना स्थायी निवासी क्यों बनने देते हो?"

गुरु के ये शब्द शिष्य के मन में गहरे उतर गए। उसे पहली बार यह समझ आया कि क्रोध उसके अस्तित्व का

हिस्सा नहीं है, बल्कि एक बाहरी भावना है। वह गुरु के पास से वापस लौट गया, और उसके मन में एक नई समझ जाग चुकी थी।

इस वार्तालाप के बाद, जब भी शिष्य को गुस्सा आने लगता, तो उसे गुरु के शब्द याद आते। वह खुद से पूछता, "क्या यह सच में मेरा स्वभाव है? क्या मैं इसे अभी बुला सकता हूँ?" जैसे ही उसे याद आता कि वह ऐसा नहीं कर सकता, क्रोध की वह क्षणिक लहर धीरे-धीरे शांत हो जाती।

धीरे-धीरे, शिष्य ने इस अभ्यास से अपने क्रोध पर नियंत्रण करना सीख लिया। उसने समझा कि भावनाओं पर हमारा नियंत्रण तब तक नहीं होता जब तक हम उन्हें अपना हिस्सा मान लेते हैं।

लेकिन जैसे ही हम उन्हें एक बाहरी घटना की तरह देखना शुरू करते हैं, वे अपनी पकड़ खो देती हैं। इस प्रकार, शिष्य ने धीरे-धीरे शांत और संयमित व्यवहार को अपना लिया और एक सच्चे ज़ेन शिष्य की तरह शांतिपूर्ण जीवन जीने लगा।

५.“चाय का प्याला”

एक बार की बात है, जापान के एक पहाड़ी इलाके में स्थित एक शांत ज़ेन मठ में सुजुकी रोशी नामक एक बहुत ज्ञानी गुरु रहते थे। उनके शिष्य, जो दूर-दूर से ज्ञान प्राप्त करने आते थे, उनकी हर बात को बड़े ध्यान से सुनते थे। रोशी का एक शिष्य, जिसका नाम ताकेशी था, स्वभाव से बहुत जिज्ञासु था। वह अक्सर ऐसे सवाल पूछता था जो दूसरों को सामान्य लगते थे, लेकिन रोशी उनमें भी जीवन का एक गहरा दर्शन खोज लेते थे।

एक दिन, मठ में चाय पीने का समारोह चल रहा था। ताकेशी ने ध्यान से देखा कि सभी भिक्षु कितने आराम और सावधानी से अपने चाय के प्याले पकड़ रहे थे। ये प्याले बहुत पतले और नाजुक थे, ऐसा लगता था कि ज़रा सी असावधानी से ये टूट जाएँगे।

ताकेशी ने अपना प्याला मेज पर रखते हुए धीरे से रोशी से पूछा, "गुरुजी, मुझे एक बात समझ नहीं आती। जापानी लोग चाय के प्याले इतने पतले और कमज़ोर क्यों बनाते हैं? क्या इन्हें थोड़ा मोटा और मजबूत नहीं बनाया जा सकता, ताकि ये आसानी से न टूटें?"

ताकेशी का सवाल सुनकर, रोशी ने अपनी आँखों को बंद कर लिया और एक गहरी साँस ली। फिर उन्होंने अपनी आँखें खोली और मुस्कुराते हुए ताकेशी से कहा, "ताकेशी, चाय के प्याले कमज़ोर नहीं होते, बल्कि तुम्हें उन्हें भली-भांति सहेजना नहीं आता।"

रोशी का जवाब सुनकर ताकेशी थोड़ा असमंजस में पड़ गया। उसने कहा, "लेकिन गुरुजी, अगर मैं इसे गलती से थोड़ा जोर से पकड़ लूँ, तो यह टूट जाएगा।"

रोशी ने ताकेशी की बात का जवाब देने के बजाय एक और सवाल पूछा, "क्या तुमने कभी नदी के बहाव को देखा है? जब कोई पत्थर उसके रास्ते में आता है, तो क्या नदी उसे अपने लिए बदलती है या उसके चारों ओर से बहने लगती है?"

ताकेशी ने तुरंत उत्तर दिया, "नदी उसके चारों ओर से बहने लगती है।" "ठीक उसी तरह, ताकेशी," रोशी ने समझाया, "तुम्हें भी स्वयं को अपने परिवेश में ढालना सीखना चाहिए, न कि परिवेश को अपने लिए बदलने का प्रयास करना चाहिए। जीवन में हर चीज़ नाजुक और भंगुर है, चाहे वह एक प्याला हो, एक रिश्ता हो या तुम्हारा खुद का मन।

अगर तुम अपनी सारी शक्ति और ध्यान चीज़ों को बदलने में लगा दोगे ताकि वे तुम्हारी सुविधा के अनुसार चलें, तो तुम निराश ही होगे।" "लेकिन, अगर तुम उनकी नाजुकता को स्वीकार करते हुए उनके साथ व्यवहार करना सीखते हो, तो तुम न केवल उन्हें टूटने से बचाते हो, बल्कि स्वयं भी अधिक धैर्यवान और लचीले बन जाते हो।

यह प्याला तुम्हें सिखाता है कि जीवन में हर चीज़ को सम्मान, देखभाल और ध्यान से संभालना चाहिए।" ताकेशी को गुरु की बात का गहरा अर्थ समझ में आ गया। उस दिन के बाद, वह न केवल अपने चाय के प्याले को सावधानी से संभालने लगा, बल्कि जीवन की हर चुनौती और हर रिश्ते को भी इसी तरह के ध्यान और सम्मान के साथ संभालने लगा।

उसे एहसास हुआ कि दुनिया को अपनी मर्जी के अनुसार ढालने की कोशिश करने के बजाय, खुद को दुनिया के अनुरूप ढालना ही सच्ची शांति और ज्ञान का मार्ग है।

६.“अंतिम संदेश”

जापान के एक दूरस्थ प्रांत में, एक शांत और प्राचीन मठ था, जहाँ तन्जेन नामक एक प्रतिष्ठित ज़ेन गुरु अपने शिष्यों को ज्ञान का मार्ग दिखाते थे। तन्जेन रोशी, जैसा कि उन्हें प्यार से बुलाया जाता था, अपनी गहरी अंतर्दृष्टि और सरल शिक्षाओं के लिए जाने जाते थे। उन्होंने कई दशकों तक अनगिनत लोगों को आत्म-ज्ञान की ओर प्रेरित किया था।

अपने जीवन के अंतिम दिनों में, तन्जेन रोशी ने महसूस किया कि उनका सांसारिक सफर अब पूरा होने वाला है। उन्होंने शांतिपूर्वक अपने एक प्रिय शिष्य को बुलाया। उस दिन, रोशी के चेहरे पर एक अद्भुत शांति और तेज था, जैसे कोई महत्वपूर्ण कार्य पूरा होने वाला हो।

रोशी ने अपने शिष्य को ६० पोस्ट-कार्डों का एक बंडल दिया। ये सादे, हल्के भूरे रंग के कार्ड थे। उन्होंने शिष्य से कहा कि वह इन सभी कार्डों को डाक में डाल दे। शिष्य ने गुरु की आज्ञा का पालन करने के लिए हामी भरी, हालांकि वह थोड़ा हैरान था कि गुरु अंतिम समय में इतने सारे पत्र क्यों भेज रहे हैं।

जब शिष्य पोस्ट-कार्ड लेकर जाने लगा, तो तन्जेन रोशी ने अपनी आँखें बंद कर लीं। कुछ ही क्षणों के भीतर, उनका शरीर शांत हो गया। तन्जेन रोशी ने इस संसार से विदा ले ली थी, बिल्कुल शांतिपूर्वक, जैसे एक शांत नदी सागर में विलीन हो जाती है।

शिष्य गुरु के अचानक देहांत से दुखी था, लेकिन उसने अपने गुरु की अंतिम इच्छा का सम्मान करते हुए तुरंत उन पोस्ट-कार्डों को डाक में डाल दिया।

अगले कुछ दिनों में, जापान के कोने-कोने से लोगों को वे पोस्ट-कार्ड मिलने लगे। जिन लोगों को ये कार्ड मिले, वे तन्जेन रोशी के शिष्य, मित्र या वे लोग थे जिन्होंने कभी उनसे मार्गदर्शन प्राप्त किया था। हर कार्ड पर एक ही संदेश लिखा था, स्पष्ट और संक्षिप्त: इस संसार से विदा ले रहा हूं। यह मेरी अंतिम घोषणा है।
तंजेन २७ जुलाई १८९२

यह संदेश पढ़कर, लोगों के हृदय में गहरी श्रद्धा और विस्मय का भाव उमड़ पड़ा। तन्जेन रोशी ने अपने जीवन के अंतिम क्षणों में भी अपने स्वभाव के अनुसार, किसी आडंबर या जटिलता के बिना, अपनी विदाई की घोषणा की थी। उन्होंने मृत्यु को भी जीवन की ही एक स्वाभाविक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया था।

उनकी यह अंतिम घोषणा उनके जीवन की सादगी, स्पष्टता और क्षणभंगुरता के प्रति गहरी जागरूकता का प्रतीक थी।

तन्जेन रोशी ने न केवल जीवन भर ज्ञान दिया, बल्कि अपनी मृत्यु से भी एक महत्वपूर्ण सबक सिखाया - कि जीवन और मृत्यु दोनों ही स्वाभाविक हैं, और हमें दोनों को शांति और स्वीकृति के साथ देखना चाहिए। उनके शिष्य और अनुयायी उनकी इस अंतिम घोषणा को हमेशा याद रखते हैं, जो उन्हें जीवन की अनित्यता और वर्तमान क्षण के महत्व की याद दिलाती रहती है।

७.“रिक्त पात्र”

पुराने जापान में, मेईज़ी युग के दौरान, एक शांत और हरे-भरे मठ में नान-इन नाम के एक प्रख्यात ज़ेन गुरु रहते थे। उनका ज्ञान इतना गहरा था कि दूर-दूर से लोग उनसे सीखने आते थे। एक दिन, एक बड़ा ही विद्वान प्रोफेसर, जो विश्वविद्यालय में पढ़ाता था, ज़ेन दर्शन के बारे में ज्ञान प्राप्त करने के लिए उनके पास आया।

प्रोफेसर को अपने ज्ञान पर बहुत गर्व था। उसे लगता था कि उसने संसार की सभी महत्वपूर्ण किताबों को पढ़ लिया है और हर विषय में उसकी गहरी पकड़ है। जब वह नान-इन के सामने बैठा, तो वह मन ही मन सोच रहा था कि गुरु उसे क्या नया सिखा सकते हैं, जो उसे पहले से ही न पता हो।

नान-इन ने प्रोफेसर का स्वागत किया और दोनों पास बैठे, एक सादे मेज पर। गुरु ने प्रोफेसर के लिए चाय बनाने का निश्चय किया। उन्होंने मिट्टी का एक प्याला और एक केतली ली, और चाय बनाना शुरू कर दिया।

गुरु ने प्रोफेसर के सामने प्याला रखा और उसमें से चाय डालना शुरू किया। वह धीरे-धीरे प्याले में चाय डालते गए। प्याला पूरा भर गया, लेकिन गुरु ने डालना बंद नहीं किया। चाय प्याले से बाहर बहने लगी और मेज पर फैल गई।

प्रोफेसर पहले तो यह सब देखकर हैरान रह गया। वह चुपचाप गुरु की अजीब हरकत को देखता रहा, लेकिन जब चाय बहकर फर्श पर गिरने लगी, तो उससे रहा नहीं गया। वह बेचैन हो उठा और बोला, "गुरुजी, बस कीजिए! प्याला पूरा भर चुका है! अब इसमें और चाय नहीं आएगी!"

यह सुनकर, नान-इन ने चाय डालना बंद कर दिया। उन्होंने अपनी आँखें उठाईं और प्रोफेसर की ओर देखते हुए कहा, "बिल्कुल सही! यह प्याला पूरा भर चुका है।"

फिर उन्होंने अपनी उंगली से प्याले की ओर इशारा करते हुए समझाया, "इस प्याले की भाँति, तुम भी अपने विचारों, पूर्वाग्रहों और ज्ञान से पूरी तरह भरे हुए हो। तुम अपनी विद्वत्ता के कारण ज्ञान के लिए कोई खाली जगह नहीं छोड़ते।"

गुरु ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "मैं तुम्हें ज़ेन के बारे में कैसे बता सकता हूँ, जब तक तुम अपने मन के इस कप को खाली नहीं कर देते? जब तक तुम अपने पूर्व ज्ञान और घमंड को छोड़ नहीं देते, तब तक तुम कुछ भी नया नहीं सीख सकते।"

नान-इन के ये शब्द सीधे प्रोफेसर के हृदय में उतर गए। उसे अपनी गलती का एहसास हुआ। उसने समझ लिया कि सच्चा ज्ञान पाने के लिए सबसे पहले अपने मन को खाली करना और एक सीखने वाले की तरह विनम्र बनना आवश्यक है। उस दिन के बाद, प्रोफेसर ने अपने घमंड को त्यागकर एक विनम्र शिष्य की तरह सीखना शुरू किया, और तभी उसे ज़ेन का वास्तविक अर्थ समझ में आया।

८.“करुणा की मूर्ति”

बहुत समय पहले की बात है, जब चीन के विशाल साम्राज्य में गौतम बुद्ध के ज्ञान की खबर पहुंची। सम्राट और प्रजा, दोनों ही उनके शांति, प्रेम और करुणा के संदेश से बहुत प्रभावित हुए। सम्राट ने अपने सबसे कुशल मूर्तिकारों को बुलाया और उन्हें बुद्ध की एक ऐसी भव्य प्रतिमा बनाने का आदेश दिया, जो उनके गुणों को दर्शा सके।

मूर्तिकार दुविधा में पड़ गए। उन्होंने कहा, "हे राजन, बिना बुद्ध को जाने, हम उनकी प्रतिमा कैसे बना सकते हैं? हमें उनके जीवन, उनके आचरण और उनके गुणों के बारे में जानना होगा।"

सम्राट ने आदेश दिया कि उन्हें बुद्ध के जीवन से जुड़ी सभी कथाएं सुनाई जाएं। मूर्तिकार महीनों तक बुद्ध के जीवन के बारे में सुनते रहे। उन्होंने सुना कि कैसे बुद्ध ने अपना राजसी जीवन त्याग दिया। उन्होंने यह भी सुना कि कैसे वे वर्षों तक तपस्या में लीन रहे, और अंततः उन्हें आत्मज्ञान प्राप्त हुआ।

सबसे बढ़कर, मूर्तिकारों ने बुद्ध की करुणा और ममता के बारे में सुना। उन्होंने सुना कि बुद्ध हर प्राणी के प्रति दयालु थे। वे बीमारों की सेवा करते थे, भूखों को भोजन देते थे, और दुखियों के आँसू पोंछते थे। उनकी करुणा इतनी गहरी थी कि उन्होंने अपने विरोधियों को भी प्रेम से क्षमा कर दिया था।

सारी कथाएं और गुण जानने के बाद, मूर्तिकारों ने एक-दूसरे से कहा, "यह आदमी पुरुष तो हो ही नहीं सकता। भले ही उसका शरीर पुरुष का था, लेकिन इतनी करुणा और ममता, इतना प्रेम और धैर्य, यह केवल एक स्त्री के भीतर ही हो सकता है।"

उन्होंने महसूस किया कि बुद्ध का आंतरिक स्वभाव किसी पुरुष जैसा कठोर या अहंकारी नहीं था, बल्कि स्त्री जैसा कोमल, सहनशील और ममतामयी था। उनकी करुणा में एक माँ की ममता थी।

मूर्तिकारों ने सम्राट के सामने यह बात रखी। सम्राट ने उनकी बात से सहमति जताई और उन्हें बुद्ध के गुणों के अनुरूप ही प्रतिमा बनाने की अनुमति दी।

और इस तरह, उन मूर्तिकारों ने एक अद्भुत प्रतिमा बनाई। यह प्रतिमा एक स्त्री की थी, जिसके चेहरे पर अद्भुत शांति और करुणा थी। उनके हाथों में कमल का फूल था और चेहरे पर मुस्कान थी। यही प्रतिमा बाद में क्वानइन के नाम से प्रसिद्ध हुई और आज भी चीन में पूजी जाती है।

९.“जीवन जीने की कला”

पुराने चीन के एक छोटे से गाँव में, एक समझदार और शांत हृदय वाला युवक रहता था, जिसका नाम लिन था। लिन हमेशा बेचैन और चिंतित रहता था। वह या तो बीते हुए कल के बारे में सोचकर पछताता था, या फिर आने वाले कल की चिंता में डूबा रहता था। उसका मन कभी शांत नहीं रहता था।

एक दिन, गाँव में एक बूढ़े ज्ञानी लाओ-त्सू का आगमन हुआ, जिनकी बुद्धिमत्ता की चर्चा दूर-दूर तक थी। लिन उनके पास गया और अपनी बेचैनी का कारण बताते हुए बोला, "गुरुजी, मेरा मन कभी शांत नहीं रहता। मैं क्या करूँ?"

लाओ-त्सू ने मुस्कुराते हुए कहा, "बेटा, तुम्हें जीवन जीने की कला सीखनी होगी।"

"वह क्या है, गुरुवर?" लिन ने उत्सुकता से पूछा।

लाओ-त्सू ने गहरी सांस ली और कहा, "तुम्हें दो बातों को एक साथ जीना सीखना होगा, क्योंकि यही जीवन का संतुलन है।"
"पहली बात, जियो ऐसे जैसे यह आखिरी दिन हो।"

यह सुनकर लिन चौंक गया। उसने पूछा, "इसका क्या मतलब है?"

लाओ-त्सू ने समझाया, "इसका मतलब है कि कल पर कुछ भी मत टालो। जो भी करना है, आज कर लो, अभी कर लो। यह क्षण, यही एकमात्र क्षण है, जो तुम्हारे हाथ में है। इस सूरज के ढलने से पहले, अपने सभी अधूरे कामों को पूरा कर लो। अपनी सारी महत्वाकांक्षाओं को अभी जी लो, क्योंकि कल का कोई भरोसा नहीं है।"

"और दूसरी बात," लाओ-त्सू ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "जियो ऐसे भी जैसे सदा यहाँ रहना हो।"

लिन और भी हैरान हो गया। उसने पूछा, "यह तो पहली बात के बिल्कुल विपरीत है। अगर मैं सब कुछ आज ही कर लूँगा, तो फिर कल क्या करूँगा?"

लाओ-त्सू ने धीरे से समझाया, "इसका मतलब है कि तुम्हें जल्दी नहीं करनी है। अपने कर्मों में पूरी लगन दिखाओ, लेकिन उसके फल के लिए अधीर मत हो। बीज तो अभी बो दो, लेकिन फल जब आएंगे, तभी ठीक है। तुम्हें यह सोचना है कि तुम हमेशा यहीं रहोगे, इसलिए हर कार्य को प्रेम और धैर्य के साथ करो।"

"ठीक उसी तरह, जैसे तुम अपने प्रिय से मिलने की तैयारी करते हो। तुम द्वार पर खड़ी पगध्वनि सुनते हो, और महसूस करते हो कि वह अब आया, अब आया। तुम पूरी तरह से तैयार रहते हो, लेकिन साथ ही तुम्हें अनंत प्रतीक्षा भी रखनी होती है। यदि वह अनंत काल में भी आए, तो तुम्हारे भीतर कोई शिकायत नहीं होनी चाहिए।"

लिन को गुरु की बात समझ में आ गई। उसने सीखा कि जीवन में कर्म और धैर्य का संतुलन ही सच्ची शांति का मार्ग है। उस दिन के बाद, लिन ने हर दिन को अपने जीवन का अंतिम दिन मानकर जिया, लेकिन हर कार्य को इस धैर्य के साथ किया कि मानो उसके पास अनंत समय हो। उसने अपने मन की बेचैनी को दूर किया और जीवन के हर क्षण को पूरी तरह से जीना सीख लिया।

१०.“चोर और फ़कीर”

एक झेन फ़कीर रात सोने के ही करीब था कि चोर उसके घर में आ गया। गांव से दूर था घर। फ़कीर को बड़ी बेचैनी हुई की बेचारा चोर! इतनी रात अमावस की, अंधेरी रात में, इतने दूर चल कर आया और झोपड़े में कुछ है ही नहीं।

सिर्फ एक कंबल है जो वह खुद ही ओढ़े हुए है। तो वह चुपचाप कंबल को एक कोने में रख कर सरक गया अंधेरे में, कि यह कुछ तो ले जाए; अन्यथा इतनी दूर आया और खाली हांथ जाए! ऐसा हमारा सौभाग्य कहां कि यहां चोर आएं।

चोर तो धनियों के घर जाते हैं। पहली दफ़े तो यह भाग्य आया कि चोर ने हमें यह सम्मान दिया, और इसको भी हम अधूरा हाथ, खाली हाथ भेज दे! तो सरका कर अपने कंबल को एक कोने में हट गया। चोर कुछ डरा कि मामला क्या है! वह अंधेरे में खड़ा देख रहा है।और जब यह कंबल को छोड़कर हट गया तो उसे और भी भय लगा कि यह फसाने की तरकीब तो नहीं है, क्या मामला है?

घर में कुछ है भी नहीं, आदमी भी अजीब है! कुछ भी नहीं है घर में; बस यह कंबल ही एकमात्र दिखता है, खुद नंगा मालुम होता है। तो वह निकल कर भागना चाहा।और उसने सोचा कि इसका कम्बल भी किस मतलब का होगा; हजार छेद होंगे, सड़ा- गला होगा! जिसके पास कुछ भी नहीं, उसके कंबल का भी क्या भरोसा!

भागने को था कि उस फ़कीर ने आकर दरवाजे पर रोक लिया और कहा कि ऐसी ज्यादती मत करो, वह कंबल ले जाओ; नहीं तो मन में सदा के लिए पीड़ा रह जाएगी कि तुम आए भी, और खाली हाथ गए। कौन आता है अंधेरी रात में? और हम फकीरों के घर तो कभी कोई आता ही नहीं। तुमने तो हमें धनी होने का सम्मान दिया।

अब तुम ऐसा न करो, जल्दी न करो ले जाओ कंबल, अन्यथा हमें बड़ी पीड़ा रह जाएगी। और दुबारा आओ तो जरा खबर कर देना, हम इंतजाम पहले से कर देंगे। कुछ मिलेगा जरूर। पता ही न हो तो हम भी क्या कर सकते हैं? ऐसे अतिथि की तरह मत आना, एक चिट्ठी डाल देना। वह आदमी तो घबरा गया था। घबराहट में उसे कुछ सुझा नहीं, उसने सोचा, लो कंबल और निकल जाओ; यह आदमी तो कुछ आदमी जैसा नहीं मालुम पड़ता; या तो पागल है या फिर किसी और लोक का है।

जब वह कंबल लेकर भागने लगा तो उस फ़कीर ने कहा कि देख भाई, दरवाजा अटका दे; और ध्यान रखना, कभी भी किसी के घर जाए, दरवाजा जब खोलते हो तो अटका कर जाना चाहिए। वह चोर भी सोचा कि कहां के आदमी से पाला पड़ गया। और जब वह दरवाजा अटकाने लगा तो उस फकीर ने कहा कि देख धन्यवाद दे दे, पिछे काम पड़ेगा। हमने तुझे कंबल दिया, नाहक चोर क्यों बन रहा है? धन्यवाद दे दे, बात खत्म हो गई। तो उसने धन्यवाद दिया और भागा। वह पकड़ा गया बाद में। और चोरियां पकड़ी, यह कंबल भी पकड़ा गया। मजिस्ट्रेट ने इस फकीर को बुलाया; क्योंकि अगर यह फकीर कह दे कि हां, यह चोरी करने घर में आया था तो बस काफी है।

इसके वचन का तो भरोसा था मुल्क में। फिर कोई और खोजबीन की जरूरत नहीं, यह निष्णात चोर है। लेकिन उस फकीर ने कहा कि नहीं, इसने चोरी नहीं की, मैंने भेंट दिया था; और इसने भेंट के बाद धन्यवाद भी दिया था, इसलिए बात खत्म हो गई थी। फकीर तो अदालत से बाहर निकल आया,चोर भी छोड़ दिया गया।वह आकर फकीर के पैर पकड़ लिया, उसने कहा कि मुझे भी साथ ले चलो।अब जब तक तुम जैसा न हो जाऊं तब तक चैन न मिलेगी। तुम भी आदमी गजब के हो। तुमने मेरी इतनी फिकर की उस

रात, कंबल भी दिया और भविष्य की भी चिंता ली कि धन्यवाद भी मुझसे दिलवा लिया कि मैं चोर न रह जाऊं। उस फकीर ने कहा: जब से हम साधू हुए तब से हमारे लिए कोई चोर न रहा।

११.“अच्छा-बुरा कुछ नहीं”

गाँव के पास बसे एक छोटे से गाँव में, एक किसान रहता था। उसके पास एक ही घोड़ा था, जो उसकी कमाई का जरिया था। एक दिन, उसका वह घोड़ा खूंटे से रस्सी तोड़कर भाग गया।

यह खबर गाँव में आग की तरह फैल गई। किसान के पड़ोसी उसके घर पर अफसोस जताने आए।
एक पड़ोसी ने कहा, "यह बहुत बुरा हुआ। अब तुम्हारी खेती-बाड़ी का क्या होगा?"

दूसरे ने कहा, "तुम्हारा तो बहुत बड़ा नुकसान हो गया।"
लेकिन किसान ने उनकी बातों को सुनकर बस इतना ही कहा, "हाँ... शायद।"
पड़ोसी हैरान थे कि किसान इतना शांत कैसे है।

अगले ही दिन, एक अद्भुत घटना घटी। वही घोड़ा वापस लौट आया, लेकिन अकेला नहीं। वह अपने साथ तीन और जंगली घोड़ों को लेकर आया था।

यह देखकर पड़ोसियों की खुशी का ठिकाना न रहा। वे दौड़े-दौड़े किसान के घर आए।
"यह तो बहुत अच्छा हुआ!" एक पड़ोसी ने कहा। "अब तुम्हारे पास चार घोड़े हैं।"
दूसरे ने कहा, "तुम्हारा तो भाग्य खुल गया!"

लेकिन किसान ने उनकी बात सुनकर फिर वही जवाब दिया, "हाँ... शायद।"

कुछ दिनों बाद, किसान का इकलौता जवान बेटा उन नए जंगली घोड़ों में से एक को साधने की कोशिश कर रहा था। लेकिन घोड़ा बेकाबू हो गया और उसने लड़के को जमीन पर पटक दिया, जिससे उसकी टांग टूट गई।

गाँव के लोग फिर से किसान के घर सहानुभूति जताने आए।

"यह तो बहुत ही दुखद है," एक पड़ोसी ने कहा। "तुम्हारा बेटा अब अपंग हो जाएगा।"

दूसरे ने कहा, "उसकी जवानी की जिंदगी बर्बाद हो गई।"

किसान ने उनकी बातें सुनी और फिर उसी शांत भाव से कहा, "हाँ... शायद।"
अगली सुबह, राजा के सैनिक गाँव में आए। वे युद्ध के लिए सभी स्वस्थ और मजबूत लड़कों को जबरदस्ती सेना में भर्ती कर रहे थे। उन्होंने गाँव के हर घर में जाकर जवान लड़कों को उठाया।

जब वे किसान के घर पहुंचे, तो उन्होंने देखा कि उसका बेटा टांग टूटी होने के कारण बिस्तर पर लेटा है। सैनिकों ने उसे छोड़ दिया और आगे बढ़ गए।

पड़ोसियों को जब यह पता चला, तो वे फिर से किसान के घर आए। इस बार उनके चेहरे पर खुशी और राहत थी।
"यह तो बहुत अच्छा हुआ, किसान," एक पड़ोसी ने कहा। "तुम्हारे बेटे की जान बच गई! यह सब उस टूटी हुई टांग की वजह से ही संभव हुआ।"लेकिन किसान ने इस बार भी सिर्फ मुस्कुराया और कहा, "हाँ... शायद।"

जीवन में कोई भी घटना अपने आप में अच्छी या बुरी नहीं होती। जिसे हम आज बुरा मानते हैं, वह कल के लिए वरदान साबित हो सकता है, और जिसे हम आज अच्छा मानते हैं, वह कल के लिए एक मुश्किल भी ला सकता है। जीवन के हर उतार-चढ़ाव को बिना किसी निष्कर्ष के स्वीकार करना ही सच्ची शांति है।

१२.“एक शब्द का सार”

झेन फ़कीर हुआ, रिंझाई। किसी ने पूछा कि मैं जरा जल्दी में हूँ, एक शब्द में बता दो -- जीवन में क्या करने योग्य है? तो वह चुप बैठा रहा । उस आदमी ने कहा: जल्दी करो, चुप क्यों बैठे हो?

उसने कहा: कह दिया जो कहना था। क्योंकि जो कहना था, वह चुप्पी है। बोलने से खराब हो जाएगी।

समझ गए तो समझ गए। नही समझे तो और कहीं समझ लेना।

उस आदमी ने कहा कि लुभाते हो तुम। तुम्हें देखकर रुकने का मन होता है, पर मैं जल्दी में हूँ। और इतनी सी बात और अटकाएगी। मैं और चिंतित रहूंगा कि पता नहीं, क्या मतलब था! तुम संक्षिप्त में एक शब्द तो बोल दो।

तो रिंझाई ने कहा: ध्यान।

उस आदमी ने कहा: चलो कुछ तो तुम बोले ; लेकिन इतने से कुछ बहुत साफ नहीं होता। ध्यान यानी क्या?

रिंझाई ने कहा: ध्यान यानी ध्यान।

उस आदमी ने कहा: अब और पहेलियां मत बूझो। मुझे जाना है, जल्दी में हूँ और तुम उलझाए चले जा रहे

हो? ध्यान यानी ध्यान -- इसका क्या मतलब?

रिंझाई ने कहा: अब तुम इतना ही पूछो, ध्यान यानी ध्यान और ध्यान यानी ध्यान -- ऐसे ही मैं दोहराता चला जाऊंगा; क्योंकि ध्यान यानी ध्यान, और कुछ है नहीं। अब करो और जानो।

१३.“समय का रहस्य”

एक मार्शल आर्ट्स का युवा और उत्साही छात्र अपने गुरु के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हुआ था। उसकी आँखों में चमक थी, जो उसके मन में छिपी लगन और सीखने की तीव्र इच्छा को दर्शा रही थी।

"गुरुवर," उसने विनम्रतापूर्वक कहा, "मैं आपके चरणों में बैठकर मार्शल आर्ट्स की शिक्षा प्राप्त करना चाहता हूँ। कृपया मुझे बताएं कि इस कला में पूरी तरह पारंगत होने में मुझे कितना समय लगेगा?"

गुरु ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरा, और उसकी शांत, गहरी आँखों ने छात्र की अधीरता को भाँप लिया। उन्होंने एक पल के लिए अपनी नजरें दूर क्षितिज पर टिकाईं, और फिर धीरे से बोले, "दस साल।"

छात्र थोड़ा निराश हुआ। दस साल! यह तो बहुत लंबा समय था। उसके मन में जल्दी से सीखने का जुनून था। वह गुरु को दिखाना चाहता था कि वह सामान्य शिष्यों जैसा नहीं है।

"गुरुवर," उसने जल्दी से कहा, "मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं असाधारण मेहनत करूँगा। मैं प्रतिदिन न सिर्फ़ एक या दो घंटे, बल्कि दस घंटे से भी ज़्यादा अभ्यास करूँगा। मैं अपनी पूरी लगन और समय इस कला को समर्पित करूँगा। यदि मैं इतनी कठोर मेहनत करूँ, तो क्या मैं दस साल से पहले इसमें महारत हासिल कर सकता हूँ?"

गुरु ने अब अपनी आँखें बंद कर लीं, मानो वे ब्रह्मांड की गहराइयों में किसी रहस्य को खोज रहे हों। हवा में एक खामोशी छा गई, सिर्फ़ पक्षियों की चहचहाहट सुनाई दे रही थी।

फिर, उन्होंने अपनी आँखें खोलीं और छात्र की ओर देखा। उनकी आवाज पहले से भी ज़्यादा धीमी और गंभीर थी।

"यदि तुम प्रतिदिन दस घंटे अभ्यास करोगे," गुरु ने कहा, "तो तुम्हें इसमें महारत हासिल करने में बीस साल लगेंगे।"

युवा शिष्य आश्चर्यचकित रह गया। उसने सोचा था कि ज़्यादा मेहनत से समय कम होगा, लेकिन गुरु ने तो उसे दोगुना समय बता दिया था।

"ऐसा क्यों, गुरुवर?" उसने भ्रमित होकर पूछा, "क्या ज़्यादा मेहनत से समय कम नहीं होना चाहिए?"

गुरु ने मुस्कुराते हुए समझाया, "जब तुम दस घंटे अभ्यास करते हो, तो तुम्हारे पास सोचने का समय नहीं बचता। तुम्हारा दिमाग़ सिर्फ़ शारीरिक क्रियाओं पर केंद्रित रहता है। तुम कला को महसूस नहीं कर पाते, उसकी बारीकियों को समझ नहीं पाते। तुम सिर्फ़ शरीर को थकाते हो, आत्मा को नहीं। अभ्यास के साथ-साथ, आत्मनिरीक्षण और विश्राम भी ज़रूरी है। मार्शल आर्ट्स सिर्फ़ लड़ने की कला नहीं, बल्कि जीवन जीने की कला है।"

"जो शिष्य हर क्षण सिर्फ़ 'जल्दी' पारंगत होने के बारे में सोचता है, वह अपने लक्ष्य से भटक जाता है। वहवर्तमान में नहीं जीता, बल्कि भविष्य की चिंता करता रहता है। और यही बेचैनी उसे कभी भी पूरी तरह से शांत और निपुण नहीं होने देती।" गुरु ने छात्र के कंधे पर हाथ रखा, और उसे शांति से बैठने का इशारा किया।

"अपनी बेचैनी को छोड़ो। धैर्य को अपना गुरु बनाओ। जब तुम शांत मन से अभ्यास करोगे, तभी तुम इस कला के सच्चे सार को समझ पाओगे।"युवा छात्र को गुरु की बात समझ आ गई। उसने जल्दीबाज़ी छोड़ दी और धैर्य के साथ सीखने का संकल्प लिया। उसने समझ लिया था कि हर चीज़ का एक सही समय होता है और कला को सीखने का सबसे अच्छा तरीका उसमें पूरी तरह से डूब जाना है, न कि उसे जल्दी से खत्म करना।

१४.“सरलता का जादू”

एक शांत और सुरम्य स्थान पर, रयूमों का प्राचीन मंदिर स्थित था। यहाँ, बेनकेई नामक एक प्रतिष्ठित ज़ेन गुरु अपने शिष्यों को ज़ेन के गूढ़ रहस्यों और जीवन के सरल सत्यों का ज्ञान दिया करते थे। बेनकेई की शिक्षाएँ सीधी और व्यावहारिक होती थीं, जो दिखावे और आडंबर से परे थीं। उनके अनुयायियों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी।

उसी क्षेत्र में, शिन्शू मत को मानने वाला एक पंडित भी रहता था। वह अपने धार्मिक ज्ञान और चमत्कारी शक्तियों के प्रदर्शन के लिए प्रसिद्ध था। शिन्शू मत के अनुयायी अक्सर ऊँचे और प्रभावशाली मंत्रों का जाप करते थे, जिससे एक भव्य और रहस्यमय वातावरण बनता था। पंडित बेनकेई की बढ़ती लोकप्रियता और उनके अनुयायियों की भीड़ को देखकर मन ही मन जलता था। उसने निश्चय कर लिया था कि वह एक दिन बेनकेई से शास्त्रार्थ करेगा और उसे सबके सामने नीचा दिखाएगा।

एक दिन, जब बेनकेई अपने शिष्यों को एक शांत वृक्ष के नीचे बैठकर ज़ेन के सिद्धांतों के बारे में बता रहे थे, तभी अचानक वह शिन्शू पंडित अपने कुछ अनुयायियों के साथ वहाँ आ धमका। मंदिर का शांत वातावरण पंडित के ऊँचे स्वर में किए जा रहे मंत्रपाठ से भंग हो गया। उसके मंत्र इतने तेज और कर्कश थे कि बेनकेई को अपनी शिक्षा बीच में रोकनी पड़ी। शिष्य विचलित हो गए और एक-दूसरे की ओर देखने लगे। बेनकेई ने शांति बनाए रखी।

जब पंडित का मंत्रपाठ कुछ देर बाद थमा, तो उन्होंने बड़ी विनम्रता से पूछा, "पंडित जी, आप यहाँ किस उद्देश्य से आए हैं?" शिन्शू पंडित ने गर्व से अपनी छाती फुलाई और कहा, "मैं यह देखने आया हूँ कि आपके

अनुयायी किस तरह के ज्ञान को ग्रहण कर रहे हैं। सुना है, यहाँ एक साधारण सा व्यक्ति गुरु बनकर बैठा है, जिसके पास कोई विशेष शक्ति नहीं है।

हमारे गुरु तो इतने दिव्यशक्तिसंपन्न थे कि वे नदी के एक तट पर अपने हाथ में ब्रश लेकर खड़े हो जाते थे, और दूसरे किनारे पर उनका शिष्य कागज़ लेकर खड़ा रहता था। जब हमारे गुरु हवा में ब्रश से अद्भुत चित्र बनाते थे, तो वे चित्र दूसरे किनारे पर रखे कागज़ पर अपने आप बन जाते थे! बताइए, आप क्या कर सकते हैं? क्या आपके पास ऐसी कोई चमत्कारिक शक्ति है?"

बेनकेई ने पंडित की बातों को ध्यान से सुना। उनके चेहरे पर न तो आश्चर्य का भाव था और न ही किसी प्रकार का अहंकार। उन्होंने धीरे से उत्तर दिया, "पंडित जी, आपके मठ की बिल्लियाँ भी शायद ऐसा कुछ कर सकती होंगी - एक जगह बैठी रहें और दूसरी जगह कुछ अपने आप हो जाए। पर यह शुद्ध ज़ेन का आचरण नहीं है।

ज़ेन आडंबर और दिखावे से कोसों दूर रहता है। मेरा चमत्कार तो बहुत साधारण है।" बेनकेई ने अपनी स्वाभाविक शांति और सहजता से कहा, "मेरा चमत्कार यह है कि जब मुझे भूख लगती है, तब मैं शांति से भोजन कर लेता हूँ। और जब मुझे प्यास लगती है, तब मैं स्वयं उठकर पानी पी लेता हूँ।"

बेनकेई के शिष्यों को अपने गुरु की बात सुनकर गहरी शांति का अनुभव हुआ। उन्हें समझ में आ गया कि सच्चा चमत्कार बाहरी दिखावों में नहीं, बल्कि जीवन की साधारण क्रियाओं को सहजता और जागरूकता के साथ करने में है।

शिन्शू पंडित बेनकेई के इस सीधे और अप्रत्याशित उत्तर से हक्का-बक्का रह गया। उसे उम्मीद थी कि बेनकेई किसी चमत्कारिक शक्ति का दावा करेंगे या फिर उनके गुरु की महानता से प्रभावित होंगे।

लेकिन बेनकेई ने जिस सहजता से जीवन के मूल सत्य को सामने रखा था, उसने पंडित के सारे अहंकार को चूर-चूर कर दिया। उनके पास बेनकेई की इस बात का कोई जवाब नहीं था। वे कुछ देर तक चुपचाप खड़े रहे, और फिर बिना कुछ कहे अपने अनुयायियों के साथ वापस लौट गए।बेनकेई ने अपने शिष्यों की ओर देखा और मुस्कुराए। उन्होंने समझाया कि ज़ेन का मार्ग बाहरी प्रदर्शनों का नहीं, बल्कि आंतरिक अनुभव और जागृति का मार्ग है। सच्चा ज्ञान सरल और स्वाभाविक होता है, और उसे किसी चमत्कार या आडंबर की आवश्यकता नहीं होती।

१५.“जीवन का सार”

एक ज़ेन गुरु ने अपने पाँच शिष्यों को बाज़ार से लौटते हुए देखा। वे सब अपनी-अपनी साइकिलों पर थे। जब वे गुरु के पास पहुँचे और साइकिलों से उतरे, तो गुरु ने उनसे पूछा, "तुम सब साइकिलें क्यों चलाते हो?"

पहला शिष्य: "गुरुजी, मेरी साइकिल पर आलुओं का एक बोरा है। अगर मैं साइकिल नहीं चलाता तो मुझे इसे अपनी पीठ पर ढोना पड़ता।"

गुरु मुस्कुराए और बोले, "तुम बहुत चतुर हो। जो इंसान अपनी बुद्धिमानी से काम को आसान बनाता है, उसे भविष्य में अनावश्यक कष्ट नहीं उठाने पड़ते।"

दूसरा शिष्य: "गुरुजी, मुझे साइकिल चलाते समय रास्ते में पड़ने वाले पेड़-पौधों और खेतों को देखना अच्छा लगता है। इससे मुझे खुशी मिलती है।"

गुरु ने उसकी ओर देखा और कहा, "तुम धन्य हो। तुम दुनिया को खुली आँखों से देखते हो और उसकी सुंदरता में आनंद पाते हो।"

तीसरा शिष्य: "गुरुजी, मैं जब साइकिल चलाता हूँ तो मन ही मन मंत्रों का जप करता रहता हूँ। इससे मेरा मन शांत रहता है।"

गुरु ने उसकी पीठ थपथपाई और बोले, "बहुत बढ़िया। तुम्हारा मन एक नए कसे हुए पहिए की तरह स्थिर और संतुलित रहेगा।"

चौथा शिष्य: "गुरुजी, जब मैं साइकिल चलाता हूँ तो मुझे महसूस होता है कि मैं सभी जीवों से जुड़ा हुआ हूँ। मैं उनके साथ एकात्मकता महसूस करता हूँ।"

गुरु बहुत प्रसन्न हुए और बोले, "तुम अहिंसा और करुणा के स्वर्णिम पथ पर चल रहे हो।"
पाँचवाँ शिष्य: "गुरुजी, मैं साइकिल चलाने के लिए साइकिल चलाता हूँ।"

यह सुनते ही गुरु अपनी जगह से उठे और पाँचवें शिष्य के चरणों में बैठ गए। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा, "मैं आपका शिष्य हूँ।”

१६.“मौन का प्रवचन”

एक समय की बात है, एक ज़ेन मठ में रिंझाई नाम के एक महान गुरु रहते थे। उनके मठ में कई शिष्य थे, जो उनके ज्ञान से बहुत प्रभावित थे। एक दिन, एक जिज्ञासु शिष्य ने उनसे एक बहुत ही उलझन भरा सवाल पूछा।

शिष्य ने कहा, "गुरुदेव, हम सब जानते हैं कि बुद्ध ने चालीस साल तक लगातार प्रवचन दिए। उनके वचनों के आधार पर ही हमारे ये सभी शास्त्र लिखे गए हैं। हम रोज़ इन्हीं शास्त्रों का पाठ करते हैं और इन्हें प्रणाम भी करते हैं। फिर भी, आप और बाकी ज़ेन फ़कीर यह कहते हैं कि बुद्ध कभी नहीं बोले। यह कैसे संभव है?"

रिंझाई गुरु मुस्कुराए। उन्होंने शिष्य को पास बुलाया और कहा, "तुम्हारे प्रश्न में एक गहरा विरोधाभास है, और दोनों बातें सच हैं।"

फिर गुरु उसे मठ के बगीचे में ले गए। वहाँ एक बहुत पुराना कुआँ था, जिसके पास एक घड़ा रखा हुआ था। गुरु ने शिष्य से कहा, "यह कुआँ क्या बोलता है?"

शिष्य ने कुएँ को देखा और बोला, "गुरुजी, कुआँ तो नहीं बोलता।"

"और जब तुम इस घड़े को कुएँ में डालकर पानी निकालते हो, तो क्या तब कुआँ बोलता है?" गुरु ने पूछा।

शिष्य ने सोचा और जवाब दिया, "नहीं गुरुजी। कुआँ तो बस अपनी जगह पर है। वह पानी तभी देता है जब कोई उससे पानी माँगता है।"

"बिल्कुल सही!" रिंझाई ने कहा। "कुआँ खुद से पानी देने का फैसला नहीं करता। वह केवल पानी का एक स्रोत है। तुम्हारी प्यास, तुम्हारा घड़ा, और तुम्हारा पानी खींचने का प्रयास—ये ही हैं जो कुएँ से पानी निकलवाते हैं। कुआँ तो सिर्फ़ अपनी सहजता में रहता है।"

गुरु ने फिर अपनी बात समझाते हुए कहा, "बुद्ध भी उसी कुएँ की तरह थे। वे ज्ञान और सत्य के अनंत सागर थे। चालीस साल तक शिष्य उनके पास अपनी प्यास लेकर आते रहे, अपने सवालों का घड़ा लेकर आते रहे। उनकी आतुरता ने, उनकी जिज्ञासा ने, बुद्ध के भीतर से ज्ञान को बाहर खींच लिया। बुद्ध ने खुद से कोई बात नहीं कही, बल्कि उनकी सहजता से, उनके होने मात्र से, सत्य के वचन प्रवाहित होते रहे।"

रिंझाई ने शिष्य की आँखों में देखा और अपनी बात पूरी की, "तो अब बताओ, क्या कुआँ बोलता है?"
शिष्य ने तुरंत उत्तर दिया, "नहीं गुरुजी, कुआँ नहीं बोलता। वह तो बस पानी देता है।"

तब गुरु बोले, "ठीक उसी तरह, जहाँ तक हमारा संबंध है, बुद्ध बोले क्योंकि हमने उन्हें सुना। लेकिन जहाँ तक उनका संबंध है, वे कभी नहीं बोले, क्योंकि उन्होंने केवल तुम्हारी प्यास का जवाब दिया। उन्होंने अपनी तरफ से कुछ नहीं कहा, बल्कि तुम्हारी ज़रूरत ने उनसे बुलवा लिया। यही कारण है कि बुद्ध बोले भी, और नहीं भी बोले।"
शिष्य को यह गहरा रहस्य समझ में आ गया।

१७.“शोर में मौन”

एक ज़ेन गुरु जिसका नाम शोइची था, अपने शिष्यों को तोकुफू के मंदिर में सिखाया करते थे। शोइची ने निर्वाण प्राप्त कर लिया था और उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य अपने शिष्यों को भी इस मार्ग पर ले जाना था।

उनकी शिक्षा का सार था मौन। दिन हो या रात, पूरे मंदिर परिसर में एक गहरा सन्नाटा पसरा रहता था। शोइची ने मंत्रों के जाप और धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन को भी बंद करवा दिया था। उनका मानना था कि सच्चा ज्ञान शब्दों से नहीं, बल्कि आंतरिक शांति और मौन से प्राप्त होता है। उनके शिष्य केवल मौन साधना में लीन रहते थे, हर आवाज़ और हर विचार को शांत करने का अभ्यास करते थे।

एक दिन, शोइची का निधन हो गया। उनके शिष्यों ने गुरु के पार्थिव शरीर के पास बैठकर भी मौन साधना

जारी रखी। वे जानते थे कि उनके गुरु की आत्मा को सच्ची शांति तभी मिलेगी जब वे उनके सिखाए गए मार्ग पर अडिग रहेंगे। उन्होंने कोई रोना-धोना या शोक प्रकट नहीं किया, क्योंकि शोक भी एक तरह का शोर ही है।

मंदिर के पड़ोस में एक महिला रहती थी जो रोज़ मंदिर के रास्ते से गुज़रती थी। वह शोइची और उनके शिष्यों के मौन से परिचित थी। एक दिन, जब वह मंदिर के पास से गुज़री, तो उसने कुछ अजीब सुना। मंदिर से घंटियों की मधुर आवाज़ और मंत्रों का जाप सुनाई दे रहा था। यह सुनते ही वह समझ गई कि कुछ तो हुआ है। उसने सोचा, "यह तो शोइची गुरु के सिखाए गए मार्ग के खिलाफ है। ज़रूर कुछ बड़ा हुआ है।"

उसने तुरंत मंदिर के भीतर जाकर देखा। वहाँ उसने पाया कि शिष्यों ने अपने गुरु के अंतिम संस्कार की तैयारी कर ली थी। लेकिन वे कोई मंत्रों का पाठ नहीं कर रहे थे। एक शिष्य ने एक लकड़ी की घंटी ली और उसे धीरे-धीरे बजाना शुरू किया। दूसरे शिष्य ने एक छोटा सा दीपक जलाकर गुरु के चरणों के पास रख दिया।

जब महिला ने पूछा, "ये घंटियाँ और मंत्रों का जाप कैसा?" तो एक शिष्य ने शांत स्वर में जवाब दिया, "गुरु शोइची ने हमें सिखाया कि जब हम मौन को पूरी तरह से अपना लेते हैं, तो हर आवाज़ भी मौन का ही हिस्सा बन जाती है। यह घंटियों की आवाज़ कोई बाहरी शोर नहीं है, बल्कि हमारे अंदर की शांति का प्रतीक है। और यह दीपक कोई मंत्र नहीं, बल्कि हमारे हृदय में उनके ज्ञान की ज्योति है। यह सब कुछ मौन का ही एक रूप है, जो हमारे गुरु को श्रद्धांजलि दे रहा है।"

महिला यह सुनकर आश्चर्यचकित रह गई। उसे समझ आ गया कि शोइची की शिक्षा केवल मौन रहने तक सीमित नहीं थी, बल्कि मौन को जीवन के हर पहलू में महसूस करने की थी। उस दिन उसने महसूस किया कि सच्ची श्रद्धा और ज्ञान शब्दों या शोर में नहीं, बल्कि मन की गहराई में छुपी शांति में होती है।

१८.“सत्य का धैर्य”

ज़ेन मास्टर हाकुइन जिस गाँव में रहता था वहां के लोग उसके महान गणों के कारण उसको देवता की तरह पूजते थे।

उसकी कुटिया के पास एक परिवार रहता था जिसमें एक सुंदर युवा लड़की भी थी। एक दिन उस लड़की

के माता - पिता को इस बात का पता चला कि उनकी अविवाहित पुत्री गर्भवती थी।

लड़की के माता - पिता बहुत क्रोधित हुए और उन्होंने होनेवाले बच्चे के पिता का नाम पूछा। लड़की अपने प्रेमी का नाम नहीं बताना चाहती थी पर बहुत दबाव में आने पर उसने हाकूइन का नाम बता दिया।

लड़की के माता - पिता आगबबूला होकर हाकुइन के पास गए और उसे गालियां बकते हुए सारा किस्सा

सुनाया। सबकुछ सुनकर हाकुइन ने बस इतना ही कहा - "ऐसा है क्या?"

पूरे गाँव में हाकुइन की थू - थू होने लगी। बच्चे के जन्म के बाद लोग उसे हाकुइन की कुटिया के सामने छोड़ गए। हाकुइन ने लोगों की बातों की कुछ परवाह न की और वह बच्चे की बहुत अच्छे से देखभाल करने लगा। यह अपने खाने की चिंता नहीं करता था पर बच्चे के लिए कहीं न कहीं से दूध जुटा लेता था।

लड़की यह सब देखती रहती थी। साल बीत गया। एक दिन बच्चे का रोना सुनकर मां का दिल भर आया। उसने गांव वालों और अपने माता - पिता को सबकुछ सच सच बता दिया। लड़की के पिता के खेत में काम करने वाला एक मजदूर वास्तव में बच्चे का पिता था।

लड़की के माता - पिता और दूसरे लोग लज्जित होकर हाकुइन के पास गए और उससे अपने बुरे बर्ताव

के लिए क्षमा मांगी। लड़की ने हाकुइन से अपना बच्चा वापस मांगा।

हाकुइन ने मुस्कुराते हुए बस इतना कहा - "ऐसा है क्या?

१९.“प्रश्न से परे”

एक ज़ेन गुरु और एक मनोचिकित्सक किसी शांत और रमणीय स्थान पर मिले। मनोचिकित्सक, जो तर्क और विश्लेषण के क्षेत्र से थे, कई दिनों से ज़ेन गुरु की रहस्यमयी वाणी और शांत स्वभाव से प्रभावित थे।

उनके मन में एक गहरा प्रश्न कई दिनों से घूम रहा था, जिसे पूछने का उन्हें अवसर नहीं मिल पा रहा था। आखिरकार, उत्सुकता वश उन्होंने गुरु से पूछा - "आप वास्तव में लोगों की सहायता कैसे करते हैं? आपकी शिक्षाओं का सार क्या है जो दूसरों के दुखों को कम करने में सहायक होता है?"

ज़ेन गुरु ने शांत भाव से मनोचिकित्सक की आँखों में देखा और एक रहस्यमयी मुस्कान के साथ उत्तर दिया - "मैं उन्हें वहां ले जाता हूं जहां ये कोई भी सवाल नहीं पूछ सकते।"

मनोचिकित्सक इस संक्षिप्त उत्तर से चकरा गया। उनके मस्तिष्क में प्रश्नों की एक श्रृंखला उमड़ पड़ी। 'ऐसी कौन सी जगह है जहाँ प्रश्न पूछना संभव नहीं है? क्या गुरु किसी विशेष ध्यान अवस्था या आध्यात्मिक लोक की बात कर रहे हैं? क्या यह अज्ञानता की स्थिति है या परम ज्ञान की?'

मनोचिकित्सक ने अपनी जिज्ञासा को दबाते हुए पूछा, "क्या आप थोड़ा और विस्तार से बता सकते हैं कि वह स्थान कैसा है?"

गुरु ने अपनी दृष्टि दूर क्षितिज पर टिकाई और कहा, "वह स्थान विचारों से परे है, भावनाओं से परे है, पहचान से परे है। जब मन शांत हो जाता है, जब 'मैं' का भाव विलीन हो जाता है, तो कोई प्रश्न नहीं रहता। प्रश्न दुख, अज्ञानता और भ्रम से उत्पन्न होते हैं। जब इनका मूल ही समाप्त हो जाता है, तो प्रश्न कहाँ ठहरेंगे?"

मनोचिकित्सक ने इस पर गहराई से विचार किया। उनका प्रशिक्षण उन्हें समस्याओं की जड़ तक पहुँचने और प्रश्नों के माध्यम से समाधान खोजने के लिए प्रेरित करता था। गुरु की बात बिलकुल विपरीत लग रही थी। क्या सच में प्रश्नों का अभाव ही सहायता है?

कुछ देर की चुप्पी के बाद, मनोचिकित्सक ने अपनी शंका व्यक्त की, "लेकिन लोगों की समस्याएं तो वास्तविक हैं - उनके दुख, उनकी चिंताएं, उनके भय। क्या प्रश्नों के बिना उनका समाधान संभव है?"

गुरु ने धीरे से मुस्कुराया और कहा, "तुम बीमारियों का इलाज करते हो, मैं उस मन का इलाज करता हूँ जो बीमारियाँ पैदा करता है। जब मन शांत और स्थिर हो जाता है, तो बहुत सी समस्याएं स्वयं ही समाप्त हो जाती हैं। और जिन समस्याओं का समाधान आवश्यक होता है, उन्हें देखने और समझने की स्पष्टता भी तभी आती है जब मन शांत हो।

बिना शोर के, बिना विचारों के कोलाहल के, सत्य स्वयं प्रकट होता है।" मनोचिकित्सक को धीरे-धीरे गुरु की बात समझ में आने लगी। वे अक्सर मरीजों को उनके अतीत के प्रश्नों में उलझा हुआ पाते थे, भविष्य की चिंताओं में खोया हुआ पाते थे।

शायद गुरु उन्हें वर्तमान क्षण की उस शांति में ले जाने की बात कर रहे थे, जहाँ न अतीत का बोझ हो और न भविष्य की चिंता, केवल 'अब' की शाश्वतता हो। गुरु ने आगे कहा, "तुम विश्लेषण करते हो, मैं अनुभव करवाता हूँ। तुम शब्दों का उपयोग करते हो, मैं मौन का। लक्ष्य एक ही है - दुख से मुक्ति। परन्तु हमारे मार्ग भिन्न हैं।"

२०.“तर्क और अनुभव”

चांग त्सु और उनके मित्र हुई शि एक धूप भरे दिन में एक नदी के किनारे टहल रहे थे। नदी के नीले पानी में मछलियां खुशी से उछल-कूद कर रही थीं। चांग त्सु ने नदी के किनारे बैठकर मछलियों को निहारना शुरू किया। उनका मन मछलियों की मस्ती देखकर आनंदित हो उठा।

चांग त्सु ने अपने मित्र हुई शि से कहा, "देखो, वे सफेद मछलियाँ कितने आनंद से उछल रही हैं। यह है मछलियों का सच्चा आनंद।"

हुई शि, जो एक तर्कशास्त्री थे, ने तुरंत अपनी तार्किक बुद्धि का प्रयोग करते हुए कहा, "तुम स्वयं मछली नहीं हो, तो तुम यह कैसे जानते हो कि मछलियां आनंदित हैं?"

हुई शि का प्रश्न तार्किक था, पर चांग त्सु की बात केवल तर्क पर आधारित नहीं थी, वह एक गहरी समझ पर आधारित थी। चांग त्सु ने पलटकर अपने मित्र से पूछा, "तुम मैं तो नहीं हो, तो तुम यह कैसे जानते हो कि मैं यह नहीं जानता कि मछलियां आनंदित हैं?"

हुई शि कुछ देर के लिए चुप हो गए। वे यह नहीं समझ पाए कि चांग त्सु के इस सवाल में क्या छिपा है। चांग त्सु ने अपनी बात को और स्पष्ट करते हुए कहा, "जब तुम मुझसे पूछ रहे थे कि मैं कैसे जानता हूँ, तो उस समय तुम मेरे मन की अवस्था के बारे में सोच रहे थे।

तुम्हारे प्रश्न में 'तुम' का भाव था, जो यह सिद्ध करता है कि तुम मेरे आंतरिक अनुभव को जानने का प्रयास कर रहे थे। उसी तरह, मैं भी मछलियों को देखकर उनके मन की अवस्था को महसूस कर रहा था। मेरी आत्मा और उनकी आत्मा एक थी।"

चांग त्सु आगे बोले, "मैं यह नहीं कह रहा कि मैं मछली हूँ, लेकिन मैं उनके अनुभव को महसूस कर सकता हूँ क्योंकि मैं उनसे जुड़ा हुआ हूँ। यह जुड़ाव तर्क से नहीं, बल्कि प्रेम और करुणा से उत्पन्न होता है। जब तुम किसी के साथ गहराई से जुड़ते हो, तो तुम उनके सुख-दुख को बिना किसी शब्द के जान सकते हो। यही तो एक पिता अपने बच्चे के आनंद को जानता है, और एक प्रेमी अपने साथी के सुख को महसूस करता है।"

हुई शि ने कुछ सोचा और फिर कहा, "ठीक है, मैं मानता हूँ कि मैं तुम्हें नहीं जानता, और तुम भी मछली नहीं हो। लेकिन तुम मछलियों के बारे में कैसे जानते हो, यह एक रहस्य ही बना रहेगा।"

चांग त्सु ने मुस्कुराकर कहा, "यही तो सबसे बड़ा रहस्य है। जब हम स्वयं को भूलकर दूसरे के साथ एक हो जाते हैं, तब कोई भी प्रश्न नहीं रहता। मैं बस नदी के किनारे बैठा था और मेरा मन भी पानी में तैर रही मछलियों के साथ था। इस एकत्व में, कोई भी सवाल नहीं उठता। मेरा आनंद ही मछलियों का आनंद था, और उनका आनंद ही मेरा था।
"

२१.“स्वार्थ और निस्वार्थ”

एक ज़ेन कथा है कि एक बार दो यात्री मरुस्थल में खो गए। भूख और प्यास से उनका बुरा हाल था, उनकी जान निकली जा रही थी। तभी, दूर उन्हें एक ऊँची दीवार दिखी।

दीवार के पीछे उन्हें पानी के बहने और चिड़ियों की चहचहाहट सुनाई दे रही थी। पेड़ों की डालियाँ दीवार के ऊपर से झूल रही थीं, जिन पर पके और मीठे फल लदे थे।

पहला यात्री किसी तरह उस दीवार पर चढ़ गया और दूसरी तरफ़ कूदकर गायब हो गया। वह अपनी मुक्ति और शांति की खोज में निकल पड़ा था।

लेकिन, दूसरे यात्री ने एक अलग ही फ़ैसला लिया। उसने दीवार की ओर मुँह मोड़ा और रेगिस्तान में वापस लौट चला। वह अकेला नहीं, बल्कि दूसरों को भी इस जीवनदायी जगह तक लाना चाहता था। वह जानता था कि मुक्ति सिर्फ़ अपनी नहीं, बल्कि सबकी होनी चाहिए।

२२.“बुद्ध की प्रतिमा”

एक बार, एक व्यापारी अपने कपड़े के ५० थान लेकर एक दूसरे नगर में बेचने जा रहा था। यात्रा के दौरान, एक जगह वह सुस्ताने के लिए एक पेड़ के नीचे बैठ गया। उसी पेड़ की छाँव में, भगवान बुद्ध की एक बड़ी-सी पत्थर की प्रतिमा भी स्थापित थी। सुस्ताते-सुस्ताते व्यापारी को नींद लग गई।

जब वह जागा, तो उसके होश उड़ गए। उसके कपड़े के थान गायब थे। वह तुरंत पुलिस के पास गया और चोरी की रिपोर्ट लिखवाई।

मामला न्यायाधीश ओ-ओका की अदालत में पहुँचा। न्यायाधीश ने सभी की गवाही सुनी और फिर एक अजीब

निष्कर्ष निकाला। उन्होंने कहा, "इस चोरी के लिए पेड़ की छाँव में लगी बुद्ध की प्रतिमा ही जिम्मेदार है। उसका काम वहाँ आने-जाने वालों की देखभाल करना था, लेकिन उसने अपने कर्तव्य में लापरवाही की। इस लापरवाही के कारण ही चोरी हुई है। इसलिए, प्रतिमा को बंदी बना लिया जाए।"

पुलिस ने न्यायाधीश के आदेश का पालन किया और बुद्ध की उस भारी प्रतिमा को बंदी बनाकर अदालत में ले आए। इस अनोखे फ़ैसले को देखने के लिए शहर के उत्सुक लोगों की भीड़ भी प्रतिमा के पीछे-पीछे अदालत में आ पहुंची। हर कोई यह जानना चाहता था कि न्यायाधीश इस मामले में कैसा निर्णय सुनाएंगे।

जब ओ-ओका अपनी कुर्सी पर आकर बैठे, तो अदालत में भारी कोलाहल हो रहा था। लोग हँस रहे थे और आपस में बात कर रहे थे। ओ-ओका बहुत नाराज़ हो गए और बोले, "इस प्रकार अदालत में हँसना और शोरगुल करना अदालत का अनादर है। आप सभी को इसके लिए दंड दिया जाएगा।"

लोग घबरा गए और माफ़ी मांगने लगे। तब ओ-ओका ने कहा, "मैं आप सभी पर जुर्माना लगाता हूँ, लेकिन यह जुर्माना वापस कर दिया जाएगा यदि आप में से हर एक व्यक्ति तीन दिन के भीतर अदालत में कपड़े का एक-एक थान लेकर आए। जो भी ऐसा करने में असफल रहेगा, उसे बंदी बना लिया जाएगा।"

तीन दिनों के भीतर, सभी लोग कपड़े के थान लेकर अदालत में आए। भीड़ में ही, एक व्यक्ति ने डरते-डरते कपड़े का एक थान रखा, जिसे देखते ही व्यापारी ने पहचान लिया। वह थान उसी का था। इस प्रकार, चोर पकड़ा गया।

न्यायाधीश ओ-ओका ने तुरंत चोर को पकड़ने का आदेश दिया और व्यापारी के कपड़े के थान भी उसे वापस मिल गए। फिर न्यायाधीश ने सभी लोगों को उनका जुर्माना वापस कर दिया।

२३.“छिपा हुआ सत्य”

बहुत समय पहले एक नगर में एक बहुत धनी सेठ रहता था। उसके पास कई मकान और सैकड़ों खेत थे। सेठ का इकलौता पुत्र किशोरावस्था में ही घर छोड़कड़ भाग गया और किसी दूसरे नगर में जाकर छोटा मोटा काम करके जीवन गुजारने लगा।

वह बेहद गरीब हो गया था। दूसरी ओर, उसका पिता उसको सब ओर ढूंढता रहा पर उसका कोई पता नहीं चल पाया।

कई साल बीत गए और उसका पुत्र अपने पिता के बारे में भुल गया। एक नगर से दूसरे नगर मजदूरी करते और भटकते हुए एक दिन यह अनायास सेठ के घर आ गया और उसने उनसे कुछ काम मांगा।

सेठ ने अपने पुत्र को देखते ही पहचान लिया पर वह यह जनता था कि सच्चाई बता देने पर उसका बेटा लज्जित हो जाएगा और शायद फिर से घर छोड़ कर चला जाए। सेठ ने अपने नौकर से कहकर अपने पुत्र को शौचालय साफ करने के काम में लगा दिया।

सेठ के लड़के ने शौचालय साफ करने का काम शुरू कर दिया। कुछ दिनों बाद सेठ भी मजदूर का भेश धरकर अपने पुत्र के साथ सफाई का काम शुरू कर दिया। लड़का सेठ को पहचान नहीं पाया और धीरे धीरे उनमें मित्रता हो गई।

ये लोग कई महीनों तक काम करते रहे और फिर एक दिन सेठ ने अपने पुत्र को सब कुछ बता दिया। वे दोनों रोते रोते एक दूसरे के गले लग गए। अपने अतीत को वे भुलाकर वे सुखपूर्वक रहने लगे।

पिता ने अपने पुत्र को अपनी जमीन जायदाद का रख- रखाव और नौकरों की देखभाल करना सिखाया। कुछ समय बाद पिता की मृत्यु हो गई और पुत्र उसकी गद्दी पर बैठकर अपने पिता की भांति काम करने लगा।

इस कहानी में पिता एक ज्ञानप्राप्त पुरुष गुरु है , पुत्र उसका उत्तराधिकारी है, और नौकर वे आदमी और औरत हैं जिनका मार्गदर्शन वे करते हैं।

२४.“सांसारिक सुखों का भ्रम”

बहुत समय पहले की बात है, किसी नगर में एक धनी व्यक्ति रहता था। उसका घर बहुत विशाल था, इतना बड़ा कि मानो एक छोटा-सा महल हो। लेकिन उस घर से बाहर निकलने का सिर्फ़ एक ही दरवाज़ा था।

एक दिन, घर के एक कोने में अचानक आग लग गई। देखते ही देखते, आग की लपटें पूरे घर में तेज़ी से फैलने लगीं। उस धनी व्यक्ति के बहुत सारे बच्चे थे—दस से भी ज़्यादा—जो उस समय घर के एक कमरे में खेल रहे थे। वे अपने खेल में इतने मग्न थे कि उन्हें इस बात का ज़रा भी अंदाज़ा नहीं था कि उनके जीवन पर कितना बड़ा ख़तरा मंडरा रहा है।

पिता ने जब आग देखी तो वे घबरा गए और तुरंत बच्चों को बचाने के लिए उस कमरे की तरफ भागे। उन्होंने चिल्लाकर कहा, “प्यारे बच्चो, जल्दी बाहर निकलो! घर में आग लग गई है!” लेकिन बच्चे अपने खेल में इतने डूबे हुए थे कि उन्होंने पिता की बात पर ध्यान ही नहीं दिया।

पिता ने फिर जोर-जोर से चिल्लाया, “अगर तुम अभी बाहर नहीं निकले तो यह आग तुम्हें भी अपनी चपेट में ले लेगी!” बच्चों ने उनकी बात तो सुनी, लेकिन वे आग की गंभीरता को समझ नहीं पाए और अपने खेल में ही लगे रहे।

यह देखकर पिता को एक उपाय सूझा। उन्होंने अपनी आवाज़ में प्रेम और लालच मिलाकर कहा, “बच्चों! जल्दी बाहर जाकर देखो, मैं तुम सबके लिए गाड़ी भरकर नए-नए खिलौने लाया हूँ! अगर तुम अभी बाहर नहीं जाओगे, तो दूसरे बच्चे आकर तुम्हारे खिलौने चुरा लेंगे।”

इतना सुनते ही बच्चों के मन में उत्साह और लालच उमड़ पड़ा। वे सब अपने खेल को भूलकर तेज़ी से दरवाज़े की तरफ भागे और एक-एक करके घर के बाहर आ गए। इस तरह, पिता की चतुराई और प्रेम से उन सबकी जान बच गई।

इस कहानी में पिता बोधिसत्व या बोधिप्राप्त गुरु का प्रतीक हैं। जिस तरह पिता ने बच्चों को बचाने के लिए सत्य को छिपाकर लालच का सहारा लिया, उसी तरह गुरु भी अज्ञानी और सांसारिक मोह में डूबे हुए मनुष्यों को मोक्ष का मार्ग दिखाने के लिए कभी-कभी सांसारिक सुखों का लालच देते हैं।

२५.“तुम दूसरी ओर हो”

एक दिन, एक युवा बौद्ध सन्यासी ने अपनी वर्षों की लंबी यात्रा समाप्त की और अपने घर की ओर लौटने लगा। उसका हृदय उत्सुकता और शांति से भरा हुआ था। रास्ते में, एक बहुत बड़ी नदी उसके सामने आ गई। नदी का प्रवाह बहुत तेज था और किनारा बहुत चौड़ा। सन्यासी ने बहुत देर तक सोचा, "इस नदी को पार कैसे करूँ?"

उसने चारों ओर देखा, पर कोई नाव नहीं, कोई पुल नहीं, और पानी इतना गहरा कि वह तैर भी नहीं सकता था। बहुत देर तक सोचने और प्रयास करने के बाद, वह थक गया और निराश होकर वापस मुड़ने लगा। उसका मन हार मान चुका था।
तभी, उसकी नजर नदी के दूसरे किनारे पर पड़ी। वहाँ एक शांत, सफेद दाढ़ी वाले महात्मा बैठे हुए थे। उनके चेहरे पर एक अद्भुत शांति थी। सन्यासी के मन में एक उम्मीद जगी। उसने अपनी पूरी शक्ति से चिल्लाकरपूछा, "हे महात्मा, मैं नदी के दूसरी ओर कैसे आऊं?"

महात्मा ने अपनी आँखें खोलीं और कुछ क्षणों के लिए नदी को गौर से देखा। फिर वे मुस्कुराए और जोर से चिल्लाकर कहा, "पुत्र, तुम नदी के दूसरी ओर ही हो!"

महात्मा के इस उत्तर ने सन्यासी को चौंका दिया। वह सोचने लगा कि यह कैसा उत्तर है? मैं तो यहाँ हूँ, फिर भी महात्मा कह रहे हैं कि मैं दूसरी ओर हूँ। सन्यासी ने फिर से चिल्लाकर पूछा, "मैं नहीं समझा, कृपया मुझे

विस्तार से बताएं।"

महात्मा ने शांत स्वर में कहा, "पुत्र, तुम अपनी सोच और अपने मन की सीमाओं में उलझे हुए हो। तुम्हें लगता है कि नदी तुम्हें तुमसे अलग करती है, पर वास्तविकता यह है कि तुम अपनी यात्रा और अपने जीवन के लक्ष्य को पहले ही पार कर चुके हो। नदी तो केवल एक प्रतीक है, एक बाधा है जो तुम्हारे मन ने बनाई है।

तुम जो बनना चाहते थे, तुम जो पाना चाहते थे, वह तुम्हारे भीतर पहले से ही है। तुम जिस शांति और ज्ञान की तलाश में वर्षों से यात्रा कर रहे थे, वह तुम्हें पहले से ही मिल चुका है। तुम्हें बस अपनी इस सोच को पार करना है कि तुम अब भी अधूरे हो।"

युवा सन्यासी ने महात्मा की बात सुनी और अचानक उसे सब कुछ समझ आ गया। वह नदी को पार करने के बजाय, अपने मन की बाधाओं को पार कर चुका था। उसने महात्मा को धन्यवाद दिया और एक नई शांति और ज्ञान के साथ अपनी यात्रा जारी रखी। अब नदी उसके लिए कोई बाधा नहीं थी, बल्कि उसके जीवन का एकसुंदर हिस्सा थी।

२६.“गुरु शिष्य का सम्बन्ध”

एक जापानी ज़ेन गुरु, जिसका नाम सुजुकी रोशी था, के एक शिष्या ने एक दिन उनसे अकेले में बात की।

शिष्या ने रोशी से कहा कि उसके हृदय में रोशी के लिए बहुत अधिक प्रेम उमड़ रहा था, और वह इस भावना से भयभीत थी।

इसके जवाब में, रोशी ने शिष्या से कहा, "घबराओ नहीं।" फिर उन्होंने समझाया, "तुम अपने गुरु के प्रति किसी भी प्रकार की भावना रखने के लिए स्वतंत्र हो। और जहां तक मेरा प्रश्न है, मुझमें हम दोनों के लिए पर्याप्त संयम और अनुशासन है।"

२७.“सबसे आसान हल”

एक बार की बात है, एक तई नाम का आदमी था जो एक बहुत बड़े पहाड़ के पास रहता था। वह लगभग 90 वर्ष का था। उसके घर आने वाले लोगों को पहाड़ की वजह से बहुत मुश्किलें होती थीं।

एक दिन, तई ने इस समस्या का हल निकालने के लिए सोचा और अपने परिवार से कहा, "हमें पहाड़ का थोड़ा-सा हिस्सा काट देना चाहिए।"

उसकी पत्नी के अलावा सभी घर वालों ने उसकी बात मान ली। उसकी पत्नी ने कहा, "तुम बहुत बूढ़े और कमजोर हो गए हो। इसके अलावा, पहाड़ खोदने से निकलने वाली मिट्टी और पत्थरों को कहाँ फेंकोगे?"

तई बोला, "मैं कमजोर नहीं हूँ। मिट्टी और पत्थरों को हम इस पहाड़ की ढलान पर फेंक देंगे।"

अगले दिन, वह अपने बेटों और पोतों के साथ पहाड़ खोदने लगा। गर्मियों के दिन थे और वे सुबह से शाम तक पसीना बहाते हुए पत्थर तोड़ते रहते थे। कुछ महीनों बाद, कड़ाके की सर्दियाँ पड़ने लगीं। बर्फ जैसे ठंडे पत्थरों को उठाने से उनके हाथ जम गए।

इतनी मेहनत के बाद भी वे पहाड़ का बहुत ही छोटा-सा हिस्सा तोड़ पाए।
एक दिन, लाओ-त्ज़ु वहाँ से गुजरे और उन्होंने उनसे पूछा कि वे क्या कर रहे हैं। तई ने कहा कि वे पहाड़ को काट रहे हैं ताकि उनके घर आने वाले लोगों को पहाड़ का पूरा चक्कर न लगाना पड़े।

लाओ-त्ज़ु ने एक पल के लिए सोचा। फिर वे बोले, "मेरे विचार से, पहाड़ को काटने के बजाय तुमको अपना घर ही बदल लेना चाहिए। अगर तुम अपना घर पहाड़ के दूसरी ओर घाटी में बना लो तो पहाड़ के होने-न-होने से कोई फर्क नहीं पड़ेगा।"

तई लाओ-त्ज़ु के निष्कर्ष से हैरान रह गया और उसने लाओ-त्ज़ु के सुझाव पर अमल करना शुरू कर दिया। बाद में लाओ-त्ज़ु ने अपने शिष्यों से कहा, "जब भी तुम्हारे सामने कोई समस्या हो तो सबसे सीधे हल को मत अपनाओ और सबसे आसान हल की खोज करो।”

२८.“श्रेष्ठता या संतुलन”

एक बार एक धनी व्यापारी लाओत्से के पास आया और उसने पूछा, "आपका शिष्य येन कैसा व्यक्ति है?" लाओत्से ने उत्तर दिया, "उदारता में वह मुझसे श्रेष्ठ है।"

व्यापारी को आश्चर्य हुआ और उसने फिर पूछा, "तो आपका शिष्य कुंग कैसा व्यक्ति है?"

लाओत्से ने मुस्कुराते हुए कहा, "मेरी वाणी में उतना सौंदर्य नहीं है जितना उसकी वाणी में है।"

व्यापारी की जिज्ञासा और बढ़ गई। उसने फिर पूछा, "तो आपका शिष्य चांग कैसा व्यक्ति है?"

लाओत्से ने जवाब दिया, "मैं उसके समान साहसी नहीं हूँ।"

व्यापारी अब पूरी तरह से चकित हो गया। वह बोला, "यदि आपके शिष्य किन्हीं गुणों में आपसे श्रेष्ठ हैं, तो वे आपके शिष्य क्यों हैं? ऐसे में तो उनको आपका गुरु होना चाहिए और आपको उनका शिष्य!"

लाओत्से ने मुस्कुराते हुए कहा, "वे सभी मेरे शिष्य इसलिए हैं क्योंकि उन्होंने मुझे गुरु के रूप में स्वीकार किया है। और उन्होंने ऐसा इसलिए किया है क्योंकि वे यह जानते हैं कि किसी सद्गुण विशेष में श्रेष्ठ होना का अर्थ ज्ञानी होना नहीं है।"

व्यापारी ने फिर पूछा, "तो फिर ज्ञानी कौन है?"

लाओत्से ने उत्तर दिया, "जिसने सभी सद्गुणों में पूर्ण संतुलन स्थापित कर लिया हो।"

२९.“स्वर्ग और नर्क”

यह कहानी जापान के प्राचीन समय की है, जब समुराई योद्धाओं का बोलबाला था। नोबुगिशी नाम का एक घमंडी और ताकतवर समुराई एक दिन हाकुइन नामक एक प्रसिद्ध ज़ेन गुरु के पास गया। नोबुगिशी अपने शौर्य और तलवारबाजी पर बहुत गर्व करता था, लेकिन उसके मन में एक गहरा प्रश्न था, जिसका उत्तर उसे कहीं नहीं मिला था।

उसने गुरु हाकुइन के सामने खड़े होकर पूछा, "क्या स्वर्ग और नर्क वास्तव में होते हैं?"

हाकुइन ने उसकी तरफ देखा, जो एक भव्य समुराई के भेष में था, लेकिन उसके मन का अहंकार उसके चेहरे पर साफ झलक रहा था। गुरु ने शांत भाव से पूछा, "तुम कौन हो?"

नोबुगिशी ने गर्व से उत्तर दिया, "मैं समुराई हूँ!"

हाकुइन ने आश्चर्य और उपहास का भाव दिखाते हुए कहा, "तुम सैनिक हो? तुम्हारे जैसे व्यक्ति को कौन राजा अपना सैनिक बनाएगा? तुम तो भिखारी की तरह दिखते हो।"

हाकुइन के इन अपमानजनक शब्दों को सुनकर नोबुगिशी का चेहरा गुस्से से लाल हो गया। उसके अहंकार को इतनी गहरी चोट पहुँची कि उसका हाथ अपनी तलवार की मूठ पर चला गया। वह गुरु को सबक सिखाने के

लिए तैयार था।

हाकुइन ने उसकी आँखों में देखा और कहा, "अच्छा! तो तुम्हारे पास तलवार भी है। लेकिन इसमें इतनी धार नहीं कि यह मेरा सिर कलम कर सके।"

यह सुनकर नोबुगिशी का गुस्सा और भी बढ़ गया। वह अब और बर्दाश्त नहीं कर सकता था। उसने अपनी तलवार को झटके से म्यान से निकाला और हाकुइन पर हमला करने के लिए तैयार हो गया।

हाकुइन ने उसकी तलवार की तेज धार को देखा, लेकिन उनके चेहरे पर कोई डर नहीं था। वह शांत थे और उन्होंने नोबुगिशी की आँखों में देखकर कहा, "देखो, नर्क का द्वार खुल गया।"

गुरु के ये शब्द सुनते ही नोबुगिशी को सब कुछ समझ में आ गया। हाकुइन उसे यह समझाना चाहते थे कि उसका क्रोध और घमंड ही नर्क है। जब वह गुस्से में था, तो वह नर्क के द्वार पर खड़ा था। उसने महसूस किया कि उसका अहंकार ही उसकी सबसे बड़ी कमजोरी है।

नोबुगिशी का गुस्सा तुरंत शांत हो गया। उसने अपनी तलवार को नीचे रख दिया और गुरु के सामने दंडवत प्रणाम किया। उसने अपने अहंकार को त्यागकर विनम्रता अपनाई।

यह देखकर हाकुइन ने मुस्कुराते हुए कहा, "देखो, स्वर्ग का द्वार खुल गया।"

३०.“जीवन का अटल सत्य”

एक समय की बात है, एक बहुत धनवान व्यक्ति जेन गुरु सेंगई के पास आया। उस व्यक्ति ने गुरु से अनुरोध किया कि वे उसके और उसके परिवार के लिए कुछ ऐसा लिखें जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी समृद्धि लाए।

सेंगई ने उसकी बात सुनी और एक बड़े से कागज पर लिखा - "पिता मरता है, बेटा मरता है, पोता मरता है।"

यह देखकर धनवान व्यक्ति बहुत क्रोधित हुआ। उसने गुरु से कहा, "मैंने आपसे परिवार की खुशहाली के लिए कुछ लिखने को कहा था, और आपने यह क्या लिख दिया? यह एक घटिया मज़ाक है, मैं आपसे इसकी उम्मीद नहीं करता था।"
गुरु सेंगई ने शांति से जवाब दिया, "यह मज़ाक नहीं, बल्कि जीवन का सबसे बड़ा सच है।" उन्होंने आगे समझाया, "अगर तुम्हारा बेटा तुम्हारे सामने मर जाए तो तुम्हें बहुत दुःख होगा।

इसी प्रकार, अगर तुम्हारा पोता तुम्हारे पुत्र के सामने जीवित रहते हुए मर जाए तो तुम्हारे और तुम्हारे पुत्र दोनों को अपार दुःख होगा। लेकिन अगर पीढ़ी-दर-पीढ़ी ऐसा ही होता रहे - पिता मरता है, फिर बेटा मरता है, फिर पोता मरता है -

तो यही जीवन का प्राकृतिक नियम है। इसी तरह से तुम्हारे परिवार में वास्तविक और स्थायी समृद्धि बनी रहेगी। यह संसार का अटल सत्य है।"

३१.“वस्त्र नहीं व्यक्ति”

एक धनिक ने जैन-गुरु इक़्वकु को भोजन पर आमंत्रित किया। इक़्वकु अपने भिक्षुक वस्त्रों में उसके घर गए पर धनिक उन्हें पहचान न सका और उसने उनको भगा दिया।

इक़्वकु वापस अपने निवास पर आए और इस बार एक सुन्दर, महंगा, अलंकृत चोगा पहन कर धनिक के घर गए। धनिक ने उनको बड़े आदरभाव से भीतर लिवाया और भोजन के लिए बैठने को कहा।

इक़्वकु ने भोजन करने के लिए बिछे आसन पर अपना चोगा उतार कर रख दिया और धनिक से बोले - "चूंकि आपने मेरे चोगे को खाने पर बुलाया है अतः इसे पहले भोजन कराइए।"

इक़्वकु के इस व्यवहार पर धनिक बहुत शर्मिंदा हुआ। उसे अपनी गलती का एहसास हुआ। उसे समझ आ गया

कि उसने व्यक्ति को नहीं, बल्कि उसकी पोशाक को सम्मान दिया था। उसने इक़्वकु से अपनी गलती की माफी मांगी और उन्हें सादर भोजन कराया।

३२.“घमंड बनाम ध्यान”

एक युवा धनुर्धर अपने कौशल पर बहुत घमंड करता था क्योंकि उसने कई मुकाबलों में जीत हासिल की थी। उसका घमंड इतना बढ़ गया कि उसने एक ज़ेन-गुरु को मुकाबले के लिए चुनौती दी।

ज़ेन-गुरु एक बहुत प्रसिद्ध धनुर्धर थे। युवक ने अपने कौशल का प्रदर्शन करने के लिए बहुत दूर एक निशाने पर सटीक तीर चलाया। फिर उसने उसी निशाने पर लगे तीर को भेदते हुए एक और तीर चलाया। यह देखकर युवक ने अहंकार से ज़ेन-गुरु से पूछा, "क्या आप ऐसा कर सकते हैं?
"
ज़ेन-गुरु इस चुनौती से बिल्कुल भी विचलित नहीं हुए और उन्होंने युवक से अपने पीछे-पीछे एक पहाड़ तक चलने के लिए कहा। युवक को समझ नहीं आया कि ज़ेन-गुरु के मन में क्या चल रहा है, लेकिन वह उनके साथ चल दिया।

वे दोनों चलते-चलते एक ऐसी जगह पर पहुँचे, जहाँ दो पहाड़ों के बीच एक बहुत गहरी खाई थी। इस खाई पर एक कमजोर और अस्थिर रस्सियों का पुल बना हुआ था। तेज़ हवा के कारण पुल बहुत खतरनाक तरीके से डोल रहा था।

ज़ेन-गुरु पुल के ठीक बीचों-बीच गए और उन्होंने बहुत दूर एक पेड़ पर निशाना लगाते हुए एक तीर छोड़ा, जो बिल्कुल सटीक लगा।

पुल से बाहर आने के बाद ज़ेन-गुरु ने युवक से कहा, "अब तुम्हारी बारी है।" यह कहकर ज़ेन-गुरु एक तरफ खड़े हो गए।
भय से कांपते हुए युवक ने पुल पर किसी तरह से अपने पैर जमाने की कोशिश की। वह इतना घबराया हुआ था कि पसीने से भीगी हुई उसकी हथेलियों में से धनुष फिसल कर खाई में गिर गया।

अंत में, ज़ेन-गुरु ने युवक से कहा, "इसमें कोई संदेह नहीं कि तुम एक बेमिसाल धनुर्धर हो, लेकिन तुम अपने मन पर नियंत्रण नहीं रख पाते, जो किसी तीर को निशाने से भटकने नहीं देता।"

३३.“जीवन एक सराय”

एक प्रसिद्ध ज़ेन महात्मा एक राजा के महल में दाखिल हुए। उनके व्यक्तित्व में ऐसी गरिमा और तेज था कि किसी भी दरबान की हिम्मत नहीं हुई कि उन्हें रोक सके। महात्मा सीधे उस जगह पहुँच गए, जहाँ राजा अपने सिंहासन पर बैठे हुए थे।
राजा ने महात्मा को देखा और पूछा, "आप क्या चाहते हैं?"

महात्मा ने उत्तर दिया, "मैं इस सराय में रात गुजारना चाहता हूँ।"

यह सुनकर राजा को बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा, "लेकिन यह कोई सराय नहीं है, यह मेरा महल है।"
महात्मा ने फिर राजा से एक प्रश्न पूछा, "क्या आप मुझे बताएँगे कि आपसे पहले इस महल का स्वामी कौन था?"

राजा ने जवाब दिया, "मेरे पिता। उनका निधन हो चुका है।"

महात्मा ने फिर पूछा, "और उनसे भी पहले?"

राजा ने कहा, "मेरे दादा। वे भी बहुत पहले दिवंगत हो चुके हैं।"

महात्मा ने राजा से कहा, "तो फिर जिस जगह पर कुछ समय के लिए रहकर लोग कहीं और चले जाते हैं, उसे आप सराय नहीं कहेंगे तो और क्या कहेंगे?"

३४.“सबसे बड़ा दान”

एक समय की बात है, रियोकान नाम के एक ज़ेन गुरु एक पहाड़ी के तल पर बनी एक छोटी सी कुटिया में रहते थे। उनका जीवन अत्यंत सादगी भरा था और वे अपनी कुटिया में केवल कुछ ही चीज़ें रखते थे।

एक शाम, एक चोर चोरी करने के इरादे से उनकी कुटिया में घुस गया। वह यह देखकर हैरान रह गया कि कुटिया में कोई कीमती सामान नहीं था।

इसी दौरान, रियोकान भी वापस आ गए। उन्होंने चोर को देखा, लेकिन वे बिल्कुल भी चिंतित या क्रोधित नहीं हुए।

इसके बजाय, उन्होंने चोर से बड़ी विनम्रता से बात की। वे बोले, "तुम इतनी दूर चलकर आए हो और तुम्हारे हाथ खाली हैं, यह ठीक नहीं है। मैं तुम्हें खाली हाथ नहीं जाने दूंगा। मैं तुम्हें अपना वस्त्र उपहार के रूप में देता हूँ।"

यह सुनकर चोर अवाक रह गया। उसने कभी सोचा भी नहीं था कि कोई उसे चोरी के लिए डांटने के बजाय उपहार देगा। वह गुरु की दया और शांतिपूर्ण स्वभाव से बहुत प्रभावित हुआ। उसने संकोच करते हुए रियोकान के दिए हुए वस्त्र लिए और चुपचाप वहां से चला गया।

जब चोर चला गया, तो रियोकान कुटिया के बाहर बैठकर आकाश में चाँद को देखने लगे। चाँद की सुंदरता को निहारते हुए उनके मन में एक विचार आया, "कितना दुखद है कि मैं इस सुंदर चाँद को उस चोर को नहीं दे सका।"

३५“मन का बोझ”

तनज़ेन और एकीदो नामक दो जैन साधक अपनी धार्मिक यात्रा पर निकले थे। वे दोनों ही आध्यात्मिक ज्ञान की खोज में थे और उन्होंने सांसारिक मोह-माया को त्याग दिया था। उनकी यात्रा का मार्ग एक घने जंगल से होकर गुजर रहा था, जहाँ भारी बारिश के कारण कीचड़ और पानी भरा हुआ था।
घटना:
एक स्थान पर, उन्होंने सड़क के किनारे एक बहुत सुंदर और युवा लड़की को देखा। वह लड़की अपने गाँव जाने की कोशिश कर रही थी, लेकिन कीचड़ भरे रास्ते के कारण उसे आगे बढ़ने में बहुत मुश्किल हो रही थी। वह असहाय खड़ी थी और रो रही थी।
तनज़ेन ने लड़की की दुर्दशा देखी और तुरंत उसकी मदद करने का निर्णय लिया। बिना किसी हिचकिचाहट के, उन्होंने लड़की से कहा, "आओ, मैं तुम्हारी मदद कर देता हूँ।" उन्होंने उसे अपनी बाँहों में उठाया और सावधानी से सड़क के दूसरी तरफ पहुँचा दिया।

एक साधक का संदेह:

लड़की को सुरक्षित पहुँचाने के बाद, दोनों साधक अपनी यात्रा पर आगे बढ़े। रात भर वे चलते रहे, लेकिन एकीदो पूरी तरह से शांत था। उसके मन में कई सवाल घूम रहे थे। जैन धर्म के अनुसार, साधकों को महिलाओं से दूर रहना चाहिए और उनसे संपर्क नहीं करना चाहिए। एकीदो सोच रहा था कि क्या तनज़ेन ने नियमों का उल्लंघन किया है।

काफी देर बाद, एकीदो से रहा नहीं गया और उसने तनज़ेन से पूछा, "हम साधकों को महिलाओं के पास भी जाना मना है। तुम इतनी सुंदर और कम उम्र की लड़की को अपनी बाँहों में उठाकर कैसे ले जा सकते हो? क्या तुमने हमारे नियमों का पालन नहीं किया?"

तनज़ेन का उत्तर:
तनज़ेन ने एकीदो के मन में चल रही उथल-पुथल को समझ लिया। उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा, "मैंने तो लड़की को सड़क के पार छोड़कर वहीं छोड़ दिया था, लेकिन तुम उसे अभी तक अपने दिमाग में क्यों उठाए हुए हो?"

३६.“नश्वरता का बोध”

ज़ेन गुरु रयोकान अपनी बहन के घर गए थे, जहाँ उन्हें एक बहुत ही ज़रूरी बात पर चर्चा करनी थी। जब वे पहुँचे, तो उनकी बहन ने उनसे कहा, "अपने भांजे को कुछ समझाइए। वह कोई काम नहीं करता और अपने पिता के धन को सिर्फ मौज-मस्ती में उड़ाता है। केवल आप ही उसे सही राह पर ला सकते हैं।"

रयोकान अपने भांजे से मिले। भांजा उन्हें देखकर बहुत खुश हुआ क्योंकि जैन मार्ग अपनाने से पहले उन दोनों ने बहुत समय साथ बिताया था। भांजे को यह अहसास था कि रयोकान उसे डाँटने के लिए आए हैं। लेकिन रयोकान ने कुछ नहीं कहा, और वे चुपचाप बैठे रहे।

अगली सुबह जब रयोकान के जाने का समय हुआ, तो उन्होंने अपने भांजे से कहा, "क्या तुम मेरी जूतियों के बंद बांधने में मदद करोगे? अब मुझसे झुका नहीं जाता और मेरे हाथ भी कांपने लगे हैं।"

भांजे ने बहुत ख़ुशी-ख़ुशी उनके जूतों के बंद बांध दिए। रयोकान ने धीरे से कहा, "दिन-प्रतिदिन आदमी बूढ़ा और कमज़ोर होता जाता है। तुम्हें याद है मैं कभी कितना बलशाली और कठोर हुआ करता था?"
"हाँ," भांजे ने कुछ सोचते हुए कहा, "अब आप बहुत बदल गए हैं।"

यह सुनकर भांजे के भीतर कुछ जागने लगा। उसे अनायास यह एहसास हुआ कि उसके रिश्तेदार, उसकी माँ, और अन्य सभी सम्मानित लोग अब बूढ़े हो गए हैं। उन सभी ने उसकी बहुत देखभाल की थी, और अब उनकी देखभाल करने की ज़िम्मेदारी उसकी थी।

उस दिन से भांजे ने अपनी सारी बुरी आदतें छोड़ दीं। उसने सबके साथ-साथ अपने भले के लिए भी काम करना शुरू कर दिया, और इस तरह उसकी ज़िंदगी में एक नई शुरुआत हुई।

३७.“हर चीज का अंत”

इकक्यु नाम का एक ज़ेन साधक था जो बचपन से ही बहुत विद्वान था। उनके गुरु के पास एक ऐसा चाय का कप था जो बेजोड़ और बहुत कीमती था। वह कप गुरु को बहुत प्रिय था।

एक दिन, इकक्यु आश्रम की साफ-सफाई कर रहे थे। गलती से वह कीमती कप उनके हाथ से गिरकर टूट गया। कप के टूटने से इकक्यु बहुत परेशान हो गए। तभी उन्हें अपने गुरु के आने की आहट सुनाई दी। उन्होंने टूटे हुए कप को अपनी पीठ के पीछे छिपा लिया।

गुरु के सामने आने पर उन्होंने पूछा, "लोग मरते क्यों हैं?"

गुरु ने जवाब दिया, "मरना तो प्राकृतिक है। हर वह चीज जिसकी उम्र हो जाती है, वह मर जाती है।"

गुरु का यह उत्तर सुनकर इकक्यु को अपने प्रश्न का जवाब मिल गया। उन्होंने अपनी पीठ के पीछे छिपा हुआ टूटा हुआ कप गुरु को दिखाया और कहा, "आपके कप की भी उम्र हो चली थी।"

गुरु समझ गए कि इकक्यु ने क्या किया था। उन्होंने इकक्यु को माफ़ कर दिया। इस घटना से इकक्यु ने यह सीखा कि हर चीज का अंत निश्चित है।

३८.“अपनी समझ पर विश्वास”

एक आदमी के बगीचे में एक पेड़ था, जो बहुत फल देता था। उसके एक पड़ोसी ने उसे सलाह दी कि यह पेड़ एक मनहूस पेड़ है और उसे इसे काट देना चाहिए। आदमी ने पड़ोसी की बात मान ली और पेड़ को काट दिया।

पेड़ काटने के बाद उसने लकड़ी के लट्ठे बना दिए। लट्ठों की संख्या इतनी अधिक थी कि वे पूरे बगीचे में फैल गए। उस आदमी को चिंता हुई कि इससे उसके बाकी पौधे और फूल खराब हो जाएंगे। पड़ोसी ने तुरंत कहा कि वह लट्ठे ले जाएगा ताकि बाकी पौधे सुरक्षित रहें। आदमी ने खुशी-खुशी लट्ठे उसे दे दिए।

कुछ समय बाद, उस आदमी को अपनी गलती का एहसास हुआ। उसे लगा कि पड़ोसी ने लालच में आकर उससे अच्छा-खासा फलदार पेड़ कटवा दिया। वह अपनी समस्या लेकर लाओ-त्सु के पास गया। लाओ-त्सु ने मुस्कुराते हुए कहा कि वह पेड़ वास्तव में मनहूस था क्योंकि उसे काटकर जलाया जा चुका है। यह पेड़ का दुर्भाग्य था कि वह उस मूर्ख के बगीचे में लगा था।

यह सुनकर आदमी बहुत दुखी हुआ। लाओ-त्सु ने उसे समझाते हुए कहा कि यह अच्छी बात है कि तुम अब उतने मूर्ख नहीं हो। तुमने पेड़ तो खो दिया, लेकिन एक कीमती सबक सीख लिया है। उन्होंने आगे कहा कि जब तक तुम स्वयं अपनी समझ पर भरोसा न कर सको, तब तक किसी दूसरे की सलाह पर विश्वास मत करो।

३९.“जीवों की समानता”

किसी नगर में रहनेवाला एक धनिक लंबी तीर्थयात्रा पर जा रहा था। उसने नगर के सभी लोगों को यात्रा की पूर्वरात्रि में भोजन पर आमंत्रित किया। सैंकड़ों लोग खाने पर आए।

मेहमानों को मछली और मेमनों का मांस परोसा गया। भोज की समाप्ति पर धनिक सभी लोगों को विदाई भाषण देने के लिए खड़ा हुआ।

अन्य बातों के साथ-साथ उसने यह भी कहा, "परमात्मा कितना कृपालु है कि उसने मनुष्यों के खाने के लिए स्वादिष्ट मछलियों और मेमनों और पशुओं को जन्म दिया है।" सभी उपस्थितियों ने धनिक की बात में हामी भरी।

भोज में एक बारह साल का लड़का भी था। उसने कहा, "आप गलत कह रहे हैं।"

लड़के की बात सुनकर धनिक आश्चर्यचकित हुआ। वह बोला, "तुम क्या कहना चाहते हो?"

लड़का बोला, "मछलियाँ और मेमने भी पृथ्वी पर रहनेवाले सभी जीव-जंतु मनुष्यों की तरह पैदा होते हैं और मनुष्यों की तरह उनकी मृत्यु होती है। कोई भी प्राणी किसी अन्य प्राणी से अधिक श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण नहीं है।

सभी प्राणियों में बस यह अंतर है कि अधिक शक्तिशाली और बुद्धिमान प्राणी अपने से कम शक्तिशाली और बुद्धिमान प्राणियों को खा सकते हैं।

यह कहना गलत है कि ईश्वर ने मछलियों और मेमनों को हमारे लाभ के लिए बनाया है, बात सिर्फ इतनी है कि हम इतने ताकतवर और चालाक हैं कि उन्हें पकड़ कर मार सकें।

मच्छर और पिसू हमारा खून पीते हैं तथा शेर और भेड़िए हमारा शिकार कर सकते हैं, तो क्या ईश्वर ने हमें उनके लाभ के लिए बनाया है?"

च्वांगत्सु भी वहीं पर मेहमानों के बीच में बैठा हुआ था। वह उठा और उसने लड़के की बात पर ताली बजाई। उसने कहा, "इस एक बालक में हजार प्रौढ़ों जितना ज्ञान है।

४०“पूर्वाग्रह-जनित सोच”

लाओ-त्से ने अपने शिष्यों से कहा, "एक आदमी की कुल्हाड़ी कहीं खो गई थी। उसे शक हुआ कि उसके पड़ोसी लड़के ने ही चुराई है। जब भी वह उस लड़के को देखता, उसे उसकी आँखों में अपराधबोध, उसकी चाल-ढाल और बातचीत में चोरी के लक्षण दिखाई देते। हर चीज़ उसे यही यकीन दिलाती थी कि वह लड़का ही चोर है।

एक दिन, उस आदमी को अपनी कुल्हाड़ी घर में सफाई करते हुए मिली। वह कुल्हाड़ी उस जगह पर रखी थी, जहाँ वह उसे रखकर भूल गया था। उसी दिन जब उसने उस लड़के को फिर से देखा, तो उसे उसके हाव-भाव, बातचीत और व्यवहार में ज़रा भी अपराधबोध नहीं दिखा।"

लाओ-त्से ने इस कहानी के बाद अपने शिष्यों से कहा, "सत्य को देखने की चाह करने से पहले यह देख लो कि कहीं तुमने अपने मन की खिड़कियाँ तो बंद नहीं कर रखी हैं।"

यह कहानी हमें पूर्वाग्रह (prejudice) और पूर्वाग्रह-जनित सोच (biased thinking) के बारे में सिखाती है। जब आदमी को कुल्हाड़ी नहीं मिली, तो उसने तुरंत अपने पड़ोसी लड़के पर शक किया। इस शक के कारण, उसका मन पूर्वाग्रह से भर गया।

वह लड़के को जिस भी नज़रिए से देखता, उसे उसमें सिर्फ़ चोरी के सबूत ही मिलते। लड़के की हर हरकत, हर बात उसे अपराधी की लगती। उसकी सोच इतनी पक्षपातपूर्ण हो गई थी कि वह वास्तविकता को देख ही नहीं पा रहा था।

जब उसे अपनी कुल्हाड़ी घर में मिली, तो उसका पूर्वाग्रह दूर हो गया।

जैसे ही मन से शक और पूर्वाग्रह की दीवार हटी, उसे वही लड़का बिल्कुल सामान्य लगा। उसकी हरकतें, उसकी बातें अब उसे अपराधी की नहीं, बल्कि एक मासूम बच्चे की लगीं।

लाओ-त्से का अंतिम कथन, "सत्य को देखने की चाह करने से पहले यह देख लो कि कहीं तुमने अपने मन की खिड़कियाँ तो बंद नहीं कर रखी हैं," बहुत गहरा है।

इसका अर्थ यह है कि अगर हमारा मन पूर्वाग्रह, शक या किसी धारणा से भरा हुआ है, तो हम कभी भी सच्चाई को नहीं देख पाएंगे। हमारा मन एक ऐसी खिड़की की तरह है, जिससे हम दुनिया को देखते हैं।

अगर हम उस खिड़की को बंद कर दें या उस पर पर्दा डाल दें, तो हम बाहर की दुनिया को ठीक से नहीं देख पाएंगे। हमें केवल वही दिखाई देगा जो हम देखना चाहते हैं, न कि जो वास्तव में है।

४१.“लम्बी उम्र का रहस्य”

एक बार की बात है, प्रसिद्ध चीनी दार्शनिक कन्फ्यूशियस से मिलने एक सज्जन आए। उन दोनों के बीच लम्बी बातचीत हुई, जिसमें सज्जन ने कन्फ्यूशियस से अनेक प्रश्न पूछे और कन्फ्यूशियस ने उन सभी का धैर्यपूर्वक उत्तर दिया।
बातचीत के दौरान, उस सज्जन ने कन्फ्यूशियस से एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न पूछा, "महात्मा, लम्बे जीवन का रहस्य क्या है?"

कन्फ्यूशियस ने सज्जन की बात सुनकर मुस्कुराए और उसे अपने पास बुलाकर कहा, "मेरे मुख के अंदर देखो और बताओ, क्या इसमें जीभ है?"

सज्जन ने कन्फ्यूशियस के मुख के अंदर झाँककर देखा और उत्तर दिया, "हाँ, जीभ तो है।"

इस पर, कन्फ्यूशियस ने फिर कहा, "अच्छा, अब यह बताओ कि क्या इसमें दाँत भी हैं?"

सज्जन ने दोबारा मुख के अंदर झाँककर देखा और आश्चर्यचकित होते हुए कहा, "नहीं, दाँत तो एक भी नहीं है।"
कन्फ्यूशियस ने सज्जन की बात सुनकर एक गंभीर मुद्रा में कहा, "यह कितनी अजीब बात है! जीभ तो दाँत से पहले आई थी। उसे तो दाँतों से पहले ही चले जाना चाहिए था। लेकिन दाँत पहले क्यों चले गए?"

जब सज्जन इस गूढ़ प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दे पाए, तो कन्फ्यूशियस ने उन्हें जीवन का एक गहरा रहस्य समझाया। उन्होंने कहा, "इसका कारण यह है कि जीभ लचीली होती है, जबकि दाँत कठोर होते हैं। जिस व्यक्ति में लचीलापन होता है, वह लम्बे समय तक जीवित रहता है और जो कठोर होता है, वह जल्दी ही समाप्त हो जाता है।"

४२.“तलवारबाज”

माताजुरो याग्यु, जो एक प्रसिद्ध तलवारबाज का बेटा था, अपने पिता द्वारा घर से निकाल दिया गया। उसके पिता का मानना था कि माताजुरो कभी भी एक अच्छा तलवारबाज नहीं बन पाएगा।

माताजुरो ने दूर एक पर्वत पर रहने वाले एक प्रसिद्ध तलवारबाज, बांजो, के पास जाने का फैसला किया। बांजो ने माताजुरो की बात सुनकर कहा कि उसके पिता सही कहते हैं और वह कभी तलवारबाजी नहीं सीख पाएगा, क्योंकि वह अपनी प्रतिष्ठा खराब नहीं करना चाहता।

माताजुरो ने बांजो से पूछा कि यदि वह बहुत मेहनत करे, तो उसे निपुण तलवारबाज बनने में कितना समय लगेगा। बांजो ने जवाब दिया, "पूरी जिंदगी।" माताजुरो ने कहा कि उसके पास इतना समय नहीं है और उसने बांजो का दास बनने की पेशकश की, ताकि वह जल्दी सीख सके। बांजो ने कहा, "लगभग दस साल।" माताजुरो ने फिर पूछा कि यदि वह और भी अधिक मेहनत करे, तो कितना समय लगेगा। इस पर बांजो ने कहा, "तीन साल।"

जब माताजुरो ने इस विरोधाभास पर आश्चर्य व्यक्त किया कि पहले दस और फिर तीन साल, तो बांजो ने समझाया कि जल्दबाजी करने वाले व्यक्तियों को अच्छे परिणाम नहीं मिलते। उसने कहा कि माताजुरो को कम से कम सत्रह साल तक उसके पास रहना होगा। यह सुनकर, माताजुरो ने बांजो की बात मान ली, क्योंकि उसे समझ आ गया था कि उससे बहस करने का कोई फायदा नहीं।

बांजो ने माताजुरो से कहा कि वह 'तलवारबाजी' या 'तलवार' जैसे शब्दों का इस्तेमाल कभी न करे। माताजुरो ने तलवारबाजी सीखने की उम्मीद में बांजो के लिए दिन-रात काम करना शुरू कर दिया। वह खाना बनाता, साफ-सफाई करता, कपड़े धोता और अन्य सभी काम करता था। तीन साल बीत गए, लेकिन उसे तलवार के बारे में सोचने या बात करने की भी अनुमति नहीं थी। वह अपने भविष्य के बारे में सोचकर उदास हो जाता था।

एक दिन, जब माताजुरो चावल बना रहा था, बांजो ने पीछे से आकर लकड़ी की तलवार से उस पर जोरदार प्रहार किया। अगले दिन, जब माताजुरो किसी और काम में लगा था, बांजो ने फिर से उस पर अप्रत्याशित हमला कर दिया।
इसके बाद, बांजो के हमले दिन-रात होने लगे। माताजुरो के लिए खुद को बांजो के प्रहारों से बचाना बहुत मुश्किल हो गया था। ये हमले जागते समय तो होते ही थे, बाद में सोते समय भी होने लगे। कुछ महीनों बाद, बांजो ने असली तलवार से हमला करना शुरू कर दिया। अब माताजुरो का एक पल भी ऐसा नहीं बीतता था जब वह बांजो के हमलों के बारे में नहीं सोचता था।

इसी निरंतर अभ्यास के कारण, माताजुरो जल्द ही तलवारबाजी में निपुण हो गया। अंततः वह अपने समय का सर्वश्रेष्ठ तलवारबाज कहलाया।

४३.“स्वर्ग का आनंद”

"मरने के कुछ ही क्षणों के भीतर जुआन ने स्वयं को एक बहुत सुंदर स्थान में पाया। वह ऐसी जगह था जहाँ इतना आराम और आनंद था जिसकी उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी।

श्वेत वस्त्र पहने हुए एक व्यक्ति उसके पास आया और उससे बोला, “आप जो भी चाहते हैं, आपको वह सब कुछ मिलेगा- कैसा भी भोजन, भोग-विलास, राज-रंग।"

जुआन ने यह नहीं सोचा था कि वह जिस तरह के सपने देखता था, वह सच हो जाएगा। कई सालों तक उस स्वर्गिक आनंद को भोगने के बाद एक दिन उसने श्वेत वस्त्र पहने व्यक्ति से पूछा, “मैं जो कुछ भी करना चाहता था, वह सब कर चुका हूँ।

अब मैं कुछ काम करना चाहता हूँ ताकि स्वयं को उपयोगी अनुभव कर सकूं। क्या मुझे कुछ काम मिलेगा?”“

मैं क्षमा चाहता हूँ”, श्वेत वस्त्र पहने व्यक्ति ने कहा, “यह एकमात्र चीज है जो हम आपके लिए नहीं कर सकते। यहाँ कोई काम नहीं है।” “अजीब बात है”, जुआन ने चिढ़कर कहा,

“मैं इस तरह तो अनंतकाल तक यहाँ वक्त नहीं गुजार सकता। इससे तो अच्छा होगा कि आप मुझे नर्क में भेज दें।” श्वेत वस्त्र पहने व्यक्ति ने उसके पास आकर धीमे स्वर में कहा, “और आपको लगता है आप कहाँ हैं?””

४४.“संतुलन का पाठ”

एक शांत सुबह, ज़ेन गुरु मोकुसेन अपने आश्रम में ध्यान में लीन थे, तभी उनका एक युवा शिष्य उनके पास आया।

उसके चेहरे पर चिंता की लकीरें थीं। "गुरुदेव," उसने दुखी मन से कहा, "मैं अपनी पत्नी के स्वभाव से बहुत परेशान हूँ।

वह बहुत अच्छी है, पर उसकी कंजूसी की आदत ने घर का माहौल बोझिल कर दिया है। वह न तो ढंग से खर्च करती है, न ही किसी को कुछ देने में विश्वास रखती है। हर चीज़ को बस जकड़कर रखना चाहती है। कृपया मेरा मार्गदर्शन करें।"

गुरु मोकुसेन ने शांति से उसकी बात सुनी, अपनी आँखें खोलीं और बस मुस्कुरा दिए। उन्होंने कुछ कहा नहीं, बस उठकर शिष्य के साथ उसके घर की ओर चल दिए। शिष्य हैरान था, पर गुरु को अपने घर आते देख वह चुपचाप उनके पीछे चलता रहा। घर पहुँचकर शिष्य की पत्नी ने गुरु को देखा तो सम्मान से उनका स्वागत किया और उन्हें बैठने के लिए आसन दिया। वह कुछ जलपान लाने के लिए मुड़ने ही वाली थी कि गुरु मोकुसेन ने उसे रुकने का इशारा किया।

फिर, उन्होंने बिना कुछ कहे, अपनी एक मुट्ठी कसकर भींच ली और उस महिला के सामने कर दी। घर में एक अजीब सी खामोशी छा गई। शिष्य और उसकी पत्नी दोनों हैरान थे कि गुरु क्या कर रहे हैं। पत्नी ने कुछ देर उस कसी हुई मुट्ठी को देखा और फिर हिम्मत करके पूछा, "गुरुदेव, इसका क्या मतलब है?"

मोकुसेन शांत स्वर में बोले, "बेटी, बस इतना बताओ, अगर मेरा हाथ हमेशा, जीवन भर, इसी तरह भींचा रहे, तो तुम इसे क्या कहोगी?" महिला ने एक पल सोचा। उस बंधी मुट्ठी में उसे सिर्फ एक हाथ नहीं, बल्कि एक जीवन-शैली दिखाई दी—एक ऐसी अवस्था जो केवल पकड़ना जानती है, देना नहीं।

उसने महसूस किया कि यह कोई ताकत नहीं, बल्कि एक कमजोरी है। उसने जवाब दिया, "गुरुदेव, अगर आपका हाथ हमेशा ऐसा ही रहे, तो मुझे लगेगा जैसे इसे लकवा मार गया है। यह एक बीमार हाथ होगा, स्वस्थ नहीं।" गुरु मोकुसेन के चेहरे पर एक हल्की सी मुस्कान आई।

फिर उन्होंने अपनी मुट्ठी खोली और हथेली को पूरी तरह फैलाकर कठोरता से सीधा कर लिया, जैसे कोई कुछ भी पकड़ न सके। उन्होंने पूछा, "और अगर मेरी यह हथेली हमेशा, जीवन भर, ठीक इसी तरह खुली और फैली रहे, तो तुम इसे क्या कहोगी?" पत्नी ने उस फैली हुई हथेली को देखा।

उसने सोचा, "एक ऐसा हाथ जो कुछ पकड़ ही न सके, जो सब कुछ बस बह जाने दे, वह भी तो किसी काम का नहीं।" उसे तुरंत समझ आ गया। वह बोली, "गुरुदेव, यह भी एक तरह का लकवा ही है। यह भी एक लाचार अवस्था है।"

अब गुरु मोकुसेन की मुस्कान गहरी हो गई। उन्होंने अपना हाथ सामान्य कर लिया और खड़े हो गए। उन्होंने उस महिला की आँखों में देखा और बड़े स्नेह से कहा, "बेटी, अगर तुम जीवन का इतना गहरा सत्य समझ सकती हो, तो तुम एक बहुत अच्छी पत्नी हो।" इतना कहकर गुरु मोकुसेन वहाँ से चले गए।

वह महिला वहीं खड़ी रह गई, लेकिन उसका मन विचारों के सागर में गोते लगा रहा था। गुरु ने उसे डांटा नहीं, कोई उपदेश नहीं दिया, फिर भी वह सब कुछ कह गए थे। उसे अपनी गलती का एहसास हुआ। बंधी मुट्ठी उसकी कंजूसी थी और हमेशा खुली हथेली फिजूलखर्ची।

दोनों ही जीवन के लिए लकवा के समान थे। जीवन का सौंदर्य तो हाथ के खुलने और बंद होने के संतुलन में था—ज़रूरत पर बचाने और ज़रूरत पर साझा करने में। उस दिन के बाद से उस घर में सब कुछ बदल गया।

उस महिला ने जीवन में संतुलन का वह मौन उपदेश अपना लिया और फिर कभी उसके पति को कोई शिकायत नहीं हुई। उनका घर न केवल धन से, बल्कि आनंद और संतुलन से भी भर गया।

४५.“जेनसूत्रों की अमूल्य पुस्तक”

सत्रहवीं शताब्दी के समय तेत्सुगेन नामक एक जापानी जेन भिक्षु रहते थे, जिनके हृदय में जेन सूत्रों के लिए अगाध प्रेम और सम्मान था। उनकी एक बड़ी अभिलाषा थी- वे जेन के पवित्र सूत्रों का संग्रह करके उन्हें जापानी भाषा में प्रकाशित करना चाहते थे ताकि ज्ञान का यह सागर आम लोगों तक पहुँच सके।

उस दौर में ये सूत्र केवल चीनी भाषा में ही उपलब्ध थे, जिन्हें समझना हर किसी के लिए संभव नहीं था। यह कोई साधारण कार्य नहीं था; इसके लिए सात हजार से भी अधिक लकड़ी के तख्तों पर एक-एक अक्षर को हाथ से उकेरना था।

यह एक महायज्ञ के समान था, जिसमें अपार धन और वर्षों का समय लगना निश्चित था। इस पवित्र कार्य के लिए समाज के हर वर्ग ने योगदान दिया। धनी व्यापारियों ने स्वर्ण मुद्राएँ दान कीं, तो वहीं गरीब किसानों ने अपनी क्षमता के अनुसार ताँबे के कुछ सिक्के अर्पित किए। इस प्रकार पूरे दस वर्षों के अथक परिश्रम और यात्रा के बाद, तेत्सुगेन ने अंततः पुस्तक के प्रकाशन के लिए आवश्यक धनराशि एकत्रित कर ली।

जब तेत्सुगेन अपने प्रांत लौटे और प्रकाशन का कार्य आरंभ करने की तैयारी में थे, तभी प्रकृति ने एक विनाशकारी रूप दिखाया। उनके प्रांत से होकर बहने वाली उंजी नदी में भयंकर बाढ़ आ गई, जिसने हजारों घरों को तबाह कर दिया और फसलों को नष्ट कर दिया। बाढ़ के बाद उस क्षेत्र में भयानक अकाल पड़ गया।

लोग भूख से तड़प रहे थे, बच्चे बिलख रहे थे और हर तरफ निराशा का अंधकार था। तेत्सुगेन ने जब यह हृदय-विदारक दृश्य देखा, तो उनका मन करुणा से भर गया। उन्होंने एक पल भी संकोच नहीं किया और पुस्तक के प्रकाशन के लिए जमा किया गया सारा धन अकाल-पीड़ितों की सहायता के लिए खर्च कर दिया। उनका धन तो समाप्त हो गया, पर उन्होंने मानवता की रक्षा की।

यह उनकी पुस्तक का पहला, अदृश्य संस्करण था, जो लकड़ी पर नहीं, बल्कि लोगों के हृदयों पर लिखा गया था।तेत्सुगेन ने एक बार फिर शून्य से शुरुआत की। वे पुनः धन जुटाने के काम में लग गए। उनकी निस्वार्थ सेवा की कहानी दूर-दूर तक फैल चुकी थी,इसलिए इस बार लोगों ने और भी अधिक उत्साह से उनकी मदद की।

कुछ और साल बीते, और उन्होंने फिर से पर्याप्त धन जमा कर लिया। लेकिन दुर्भाग्य ने एक बार फिर परीक्षा ली। इस बार पूरे देश में एक भयानक महामारी फैल गई। हर दिन सैकड़ों लोग मरने लगे, और चारों ओर भय और पीड़ा का माहौल था। तेत्सुगेन का संवेदनशील हृदय फिर से द्रवित हो उठा। उन्होंने सोचा, "ये शास्त्र किस काम के, यदि इन्हें पढ़ने वाले लोग ही जीवित न रहें?" उन्होंने अपनी एकत्रित की हुई सारी धनराशि एक बार

फिर बीमारों की सेवा और पीड़ितों की मदद के लिए दान कर दी।

यह उनकी पुस्तक का दूसरा, अदृश्य संस्करण था, जो सेवा और त्याग की स्याही से लिखा गया था। दो बार अपना सर्वस्व दान करने के बाद, तेत्सुगेन ने तीसरी बार अपने लक्ष्य के लिए धन जुटाना प्रारंभ किया। अब वे वृद्ध हो
चुके थे, लेकिन उनका संकल्प हिमालय की तरह अडिग था।

इस बार उन्हें बीस साल लग गए। अंततः, उनका दशकों का सपना साकार हुआ। जेनसूत्रों की छपाई का कार्यपूर्ण हो गया। लकड़ी के उन सात हजार तख्तों पर उकेरे गए सूत्र आज भी जापान के क्योटो शहर में स्थितओबाकू मठ में पूरी श्रद्धा और सम्मान के साथ सुरक्षित रखे हुए हैं।

आज भी जापान में माता-पिता यह अपने बच्चों से पूछते हैं, "बताओ, सबसे श्रेष्ठ संस्करण कौन सा था?" और बच्चे उत्तर देते हैं, "पहले दो संस्करण।"

४६.“अमरता का रहस्य”

किसी गाँव में एक वैद्य रहता था जो यह दावा करता था कि उसे अमरता का रहस्य पता है। बहुत से लोग उसके पास यह रहस्य मालूम करने के लिए आते थे।

वैद्य उन सभी से कुछ धन ले लेता और बदले में उनको कुछ भी अगड़म-बगड़म बता देता था। उनमें से कोई यदि बाद में मर जाता था तो वैद्य लोगों को यह कह देता था कि उस व्यक्ति को अमरता का रहस्य ठीक से समझ में नहीं आया।

उस देश के राजा ने वैद्य के बारे में सुना और उसको लिवा लाने के लिए एक दूत भेजा। किसी कारणवश दूत को यात्रा में कुछ विलंब हो गया और जब वह वैद्य के घर पहुँचा तब उसे समाचार मिला कि वैद्य कुछ समय पहले चल बसा था।

दूत डरते-डरते राजा के महल वापस आया और उसने राजा से कहा कि उसे यात्रा में विलंब हो गया था और इस बीच वैद्य की मृत्यु हो गई। राजा यह सुनकर बहुत क्रोधित हो गया और उसने दूत को प्राणदंड देने का आदेश दे दिया।

च्वांगत्सु ने दूत पर आए संकट के बारे में सुना। वह राजा के महल गया और उससे बोला - "आपके दूत ने पहुँचने में विलंब करके गलती की पर आपने भी उसे वहां भेजने की गलती की।

वैद्य की मृत्यु यह सिद्ध करती है कि उसे अमरता के किसी भी रहस्य का पता नहीं था अन्यथा उसकी मृत्यु ही नहीं हुई होती। रहस्य सिर्फ यही है कि ऐसा कोई भी रहस्य नहीं है। केवल अज्ञानी ही ऐसी बातों पर भरोसा कर बैठते हैं।"

राजा ने दूत को क्षमादान दे दिया और मरने-जीने की चिंता से मुक्त होकर जीवन व्यतीत करने लगा।

४७.“आनंद के चार कारण”

एक बार लाओत्से नाम का एक व्यक्ति था, जो बहुत खुश रहता था। वह एक बहुत मोटे फर का कोट पहनता था और अपनी कमर में एक रस्सी बाँधकर अपने बैल पर बैठकर हमेशा घूमता रहता था।

वह अक्सर इकतारे जैसा एक छोटा वाद्य यंत्र लेकर, मस्ती में धुन बजाता हुआ गीत गाता था। एक दिन किसी ने उससे पूछा, "तुम इतने खुश क्यों रहते हो?"

लाओत्से ने मुस्कुराते हुए जवाब दिया, "मैं चार कारणों से खुश हूँ।

पहला कारण: मैं खुश हूँ क्योंकि मैं एक इंसान हूँ। मनुष्य होने के नाते मुझे उन सभी सुख-सुविधाओं और अनुभवों का आनंद लेने का मौका मिला है, जो केवल इंसानों के लिए उपलब्ध हैं। मेरे पास ज्ञान, भावनाएँ और दुनिया को समझने की क्षमता है।

दूसरा कारण: मैं एक पुरुष हूँ और इस वजह से मैं इस दुनिया में महिलाओं की सुंदरता की सराहना कर सकता हूँ। यह मुझे जीवन की एक और गहराई का अनुभव देता है।

तीसरा कारण: मैं बूढ़ा हो चुका हूँ। इस उम्र तक पहुँचने से मुझे जीवन का बहुत अनुभव मिला है। मैंने उन लोगों की तुलना में बहुत कुछ देखा और सीखा है, जो कम उम्र में चले गए। मेरे पास जीवन के प्रति गहरी समझ और परिपक्वता है।
चौथा और सबसे महत्वपूर्ण कारण: मैं जानता हूँ कि अब मैं मरने के लिए तैयार हूँ। मुझे मृत्यु का कोई भय नहीं है और न ही भविष्य की कोई चिंता है। मैंने अपना जीवन पूरी तरह से जिया है और अब मैं शांति से इसका अंत स्वीकार करने के लिए तैयार हूँ।"

इस तरह लाओत्से ने बताया कि जीवन के हर पहलू को स्वीकार करना, चाहे वह इंसानियत हो, रिश्ते हों, अनुभव हों या मृत्यु हो, हमें सच्चा आनंद और संतोष देता है।

४८.“काली नाक वाले बुद्ध”

एक समय की बात है, एक बौद्ध भिक्षुणी निर्वाण प्राप्त करने के लिए कठोर साधना कर रही थी। अपनी भक्ति और एकाग्रता को बढ़ाने के लिए, उसने भगवान बुद्ध की एक बहुत ही सुंदर मूर्ति बनवाई और उस पर सोने का पानी चढ़वाया। वह उस मूर्ति से इतना लगाव रखती थी कि उसे हमेशा अपने साथ रखती थी, चाहे वह कहीं भी जाए।

कई साल बीत गए, और यह भिक्षुणी अपनी मूर्ति के साथ एक ऐसे मठ में रहने लगी जहाँ बुद्ध की कई अन्य मूर्तियाँ भी थीं। मठ में हर कोई अपनी-अपनी मूर्ति की पूजा और देखभाल करता था।

भिक्षुणी रोज अपनी सोने की बुद्ध मूर्ति के सामने धूपबत्ती जलाती थी। वह चाहती थी कि उसकी भक्ति और धूप की सुगंध केवल उसके बुद्ध तक ही सीमित रहे।

इसी विचार से, उसने बांस की एक पतली नली बनाई और उसे धूपबत्ती के ऊपर रखकर उसका एक सिरा अपनी बुद्ध मूर्ति की नाक पर टिका दिया। वह ऐसा इसलिए करती थी ताकि धूप का सारा धुआं सीधे मूर्ति की नाक के अंदर जाए और किसी और को उसकी सुगंध न मिले
।
यह उसकी रोज की दिनचर्या बन गई। वह हर दिन इसी तरह से धूप जलाती थी। धीरे-धीरे, लगातार धूप के धुएं के कारण, उसकी बुद्ध मूर्ति की सोने की नाक काली पड़ गई। उसकी इस भक्ति और एकाग्रता ने मूर्ति को एक अनूठी पहचान दे दी, और लोग उसे "काली नाक वाले बुद्ध" के नाम से जानने लगे।

कभी-कभी हमारा अत्यधिक लगाव और स्वार्थपूर्ण भक्ति, भले ही अच्छे इरादों से हो, कुछ ऐसा कर बैठती है जो अनजाने में ही सही, उस चीज को नुकसान पहुंचाती है जिससे हम सबसे ज्यादा प्यार करते हैं। भिक्षुणी की भक्ति ने उसकी मूर्ति को अनूठा बना दिया, लेकिन साथ ही उसकी सुंदरता को भी बदल दिया।

४९.“ज्ञान की कसौटी”

च्वांगत्सु, एक राजा के महल में अतिथि के रूप में रहते थे, और वे दोनों प्रतिदिन धर्म पर चर्चा करते थे।

एक दिन राजा ने च्वांगत्सु से कहा, "सूर्य के उदय होने पर दीपक बुझा दिए जाते हैं।

बारिश के बाद खेत में पानी नहीं दिया जाता। आप मेरे राज्य में आ गए हैं, इसलिए मुझे शासन करने की आवश्यकता नहीं है।

मेरे शासन में हर तरफ अव्यवस्था है, लेकिन आपके शासन करने से सब कुछ व्यवस्थित हो जाएगा।"

इस पर च्वांगत्सु ने उत्तर दिया, "तुम्हारा सोचना न तो सबसे अच्छा है और न ही सबसे बुरा है।

अगर मैं शासक बन जाऊँ, तो लोगों को लगेगा कि मैंने शक्ति और धन के लालच में राज-काज स्वीकार कर लिया है। उनके इस तरह सोचने से और भी अधिक अव्यवस्था फैलेगी।

मेरा राजा बनना ऐसा होगा जैसे कोई अतिथि घर के मालिक की जगह बैठ जाए।"

यह सुनकर राजा निराश हो गया। च्वांगत्सु ने फिर कहा, "चिड़िया एक घने जंगल में अपना घोंसला बनाती है और पेड़ की एक ही डाल चुनती है।

पशु नदी से उतना ही जल पीते हैं, जितना उनकी प्यास बुझाता है। भले ही कोई रसोई को साफ-सुथरा न रखता हो, लेकिन कोई पुजारी उसकी जगह नहीं ले सकता।”

५०.“संतुष्टि का सुख”

किसी गाँव में एक बढ़ई रहता था जो बहुत ही मेहनती और ईमानदार था। अपनी मेहनत की कमाई से वह किसी तरह अपने परिवार का पालन-पोषण करता था। लेकिन उसकी पत्नी और बच्चे उसकी इस छोटी सी कमाई में संतुष्ट थे, पर बढ़ई के मन में हमेशा असंतोष रहता था।

वह अक्सर सोचता, "मैं बहुत गरीब हूँ और अपने परिवार को खुश नहीं रख पा रहा हूँ। काश मेरे पास कुछ सोना होता, तो मेरा परिवार सुखी रहता।" यह लालसा उसके मन में धीरे-धीरे बढ़ती जा रही थी।

एक दिन वह बाज़ार से गुज़र रहा था। उसकी नज़र एक सुनार की दुकान पर पड़ी, जहाँ सोने के गहने सजे हुए थे। उन गहनों को देखकर उसकी लालसा और बढ़ गई। वह इतने लालच से उन्हें देख रहा था कि वह अपने आप पर काबू नहीं रख पाया। अचानक उसने एक गहना उठाया और भागने लगा।

सुनार ने शोर मचाया और आस-पास के लोग, पुलिस, सब बढ़ई के पीछे भागने लगे। अंततः सबने मिलकर उसे पकड़ लिया और थाने ले जाकर जेल में बंद कर दिया।

चांग-त्जु नाम का एक ज्ञानी व्यक्ति था। जब उसे यह बात पता चली तो वह बढ़ई से मिलने जेल गया। उसने बढ़ई से पूछा, "इतने सारे लोगों के बीच तुमने गहने चुराने की हिम्मत कैसे की?"

बढ़ई ने उदास मन से जवाब दिया, "उस समय मुझे सोने के अलावा कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था।"

यह सुनकर चांग-त्जु सुनार के पास गया और उससे कहा, "जिस व्यक्ति ने तुम्हारे गहने चुराए हैं, वह एक बुरा आदमी नहीं है। सिर्फ़ लालच ने उसे अंधा बना दिया था। हम सब को मिलकर उसकी मदद करनी चाहिए। मैं चाहता हूँ कि तुम उसे जेल से छुड़वा दो।"

सुनार ने चांग-त्जु की बात मान ली और बढ़ई को रिहा कर दिया गया। चांग-त्जु ने बढ़ई को समझाया कि संतुष्ट रहने में ही सच्चा सुख है, और यह जानने के बाद बढ़ई का मन शांत हो गया।

एक महीने तक चांग-त्जु रोज़ बढ़ई से मिलता रहा, ताकि वह उसे जीवन में संतुष्ट रहने का सही अर्थ समझा सके। धीरे-धीरे बढ़ई को सब कुछ स्पष्ट होने लगा और वह अपनी गरीबी से संतुष्ट होकर अपना जीवन जीने लगा।

५१.“ध्यान की परीक्षा”

एक ज़ेन फ़क़ीर हुआ। वह अपने गुरु के पास था। उसने सब उपाय किए गुरु को तुष्ट करने के लिए, लेकिन गुरु तुष्ट न हो। वह उसे कहे कि जाए और ध्यान करे, और ध्यान करे। आख़िर उसने दूसरे से पूछा कि वर्षों बीत गए।

मैं ध्यान करता हूं, किसी तरह गुरु की परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं होता हूं। अब तो मैं थक भी गया हूं। क्या करूं? जिससे पूछा था, उसने कहा कि और तो हम किसी का नहीं जानते, लेकिन हम कैसे स्वीकृत हुए वह हम बता देते हैं।

मैं भी वर्षों परेशान हुआ। लेकिन जब तक मैं परेशान हो रहा था, मैं अपने को बचा रहा था। मैं सिद्ध करना चाहता था कि मैं सत्य को उपलब्ध हो गया हूं। फिर मैं थक गया। जब सच में ही थक गया तो मैंने सिद्ध करने के उपाय छोड़ दिए।

मैं मुर्दे की भांति हो गया। मैंने यह भी फ़िकर छोड़ दी कि अब उत्तीर्ण होता हूं कि नहीं होता। गुरु के पास जाता, बैठ रहता - जैसे मुर्दा हो। और जिस दिन मैं मुर्दे की भांति हो गया, उसी दिन गुरु ने मेरी पीठ थपथपाई और कहा: तूने पा लिया! कहां पाया? तो इतना मैं तुझे बता सकता हूं।

उसने कहा: नासमझ, पहले ही क्यों न कहा? यह तो हम कभी का कर देते। तीन साल ऐसे ही गंवाए। और तू यहां मद्दोस मैं की भरदना है, इतनी भी कृपा नहीं की। मैं अभी जाता हूं।

वह गया। जैसे ही गुरु ने पूछा: कैसे आए हो, वह धड़ाम से ज़मीन पर गिर पड़ा। जब अभिनय ही करना हो तो पूरा ही करना, बैठना क्या? मुर्दे कहीं बैठते हैं? वह धड़ाम से ज़मीन पर गिर पड़ा। उसने आंख मूंद ली और पड़ रहा।

गुरु ने कहा: बड़े भले लग रहे हो! बिल्कुल ठीक! ध्यान का क्या हुआ? तो उसने एक आंख खोली और कहा: वह तो अभी कुछ नहीं हुआ। तो गुरु ने एक डंडा उसके सिर पर मारा और कहा: उठ! मुर्दे कहीं बोलते हैं? तू ज़रूर

किसी से कहानी सुन कर आ गया है।

५२.“तिब्बती कहावत”

यह कहावत चार प्रकार के लोगों का वर्णन करती है और बताती है कि हमें उनके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए:

१.जो जानते हैं कि जानते हैं, और जानते नहीं हैं, वे मूर्ख हैं; उनकी छाया से भी दूर रहो।
इस श्रेणी में ऐसे लोग आते हैं जिन्हें ज्ञान नहीं है, लेकिन वे इस बात से अनभिज्ञ हैं और मानते हैं कि वे सब जानते हैं। वे अक्सर अहंकार में रहते हैं और नई बातें सीखने से कतराते हैं। ऐसे लोग न केवल खुद को नुकसान पहुंचाते हैं, बल्कि दूसरों को भी गुमराह कर सकते हैं। इसलिए, उनसे दूरी बनाए रखना ही बुद्धिमानी है ताकि उनके नकारात्मक प्रभाव से बचा जा सके।

२.जो जानते हैं कि नहीं जानते, और नहीं जानते हैं, वे शिक्षा के योग्य हैं; उन्हें सिखाओ।

ये वे लोग हैं जिन्हें ज्ञान की कमी का एहसास है और वे इसे स्वीकार करते हैं। उनमें सीखने की तीव्र इच्छा होती है और वे विनम्र होते हैं। ऐसे लोग सबसे अच्छे शिष्य साबित होते हैं क्योंकि वे अपने ज्ञान की कमी को दूर

करने के लिए उत्सुक रहते हैं। समाज का कर्तव्य है कि ऐसे लोगों को सही मार्गदर्शन और शिक्षा दे, ताकि वे आगे बढ़ सकें।

३.जो जानते हैं कि जानते हैं, और जानते हैं, वे गुरुजन हैं; उनसे सीखो।
यह सबसे उच्च श्रेणी के लोग हैं। इनके पास ज्ञान होता है और वे इस बात से भली-भांति परिचित भी होते हैं। ये अनुभवी, विद्वान और ज्ञानी होते हैं। ये लोग समाज के स्तंभ होते हैं और दूसरों को सही रास्ता दिखाते हैं। हमें ऐसे लोगों के पास जाकर उनसे ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, क्योंकि उनका अनुभव और समझ हमारे जीवन को बेहतर बना सकती है।

४.जो जानते हैं कि नहीं जानते, फिर भी जानते हैं, वे संतजन हैं; उनकी छाया का सत्संग भी अमृत है।
यह कहावत का सबसे गहरा और आध्यात्मिक हिस्सा है। इस श्रेणी में संत और ज्ञानी लोग आते हैं, जो परम ज्ञान को प्राप्त कर चुके हैं। वे भले ही दुनियावी ज्ञान की सीमाओं को स्वीकार करते हों, लेकिन उनके पास एक ऐसा आंतरिक ज्ञान होता है जो शब्दों से परे है। उनका अहंकार पूरी तरह समाप्त हो चुका होता है और वे खुद को "ज्ञानी" मानने की बजाय, हमेशा एक विनम्र शिक्षार्थी के रूप में देखते हैं। ऐसे लोगों का सानिध्य (साथ) हमें न सिर्फ ज्ञान देता है, बल्कि हमारे जीवन में शांति और सकारात्मकता भी लाता है। उनके संपर्क में रहना ही हमें अमृत के समान अनुभव देता है।

५३.“एक ताओवादी कहानी”

चीन में एक बहुत पुरानी और प्रेरणादायक कहानी है। इस कहानी में एक ताओवादी संत का जिक्र है जो दुनिया की भीड़-भाड़ से दूर, एक घने जंगल में अकेले रहते थे। वे सांसारिक मोह-माया से पूरी तरह विरक्त थे। अक्सर, जंगल से गुजरने वाले यात्री उन्हें एक पेड़ के नीचे ध्यान करते हुए देखते थे।

जब उन यात्रियों ने इस संत को देखा, तो वे बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने अपनी यात्राओं के दौरान कई अन्य संतों को भी देखा था, लेकिन वे संत आमतौर पर शिष्यों और भक्तों के बीच घिरे रहते थे, और अक्सर उनकी तलाश में भी रहते थे। वे बाज़ार जैसी जगहों पर भी दिखाई देते थे, जहाँ वे अपने शिष्यों की संख्या बढ़ाते थे।

लेकिन यह ताओवादी संत इन सब से बिल्कुल अलग थे। वे अकेले थे और उन्हें न तो शिष्यों की कोई तलाश थी और न ही उन्हें भीड़-भाड़ पसंद थी। वे सभी सांसारिक संबंधों से दूर थे। यात्रियों को यह देखकर लगा कि यही सच्चे संत हैं, क्योंकि उनका जीवन दिखावे और बाहरी प्रशंसा से परे था।

यात्रियों ने संत के चरणों में झुककर उनका सम्मान किया और कहा, "संत, आप ही सच्चे संत हैं! हमने बाज़ार में दौड़-धूप करने वाले और शिष्यों की भीड़ इकट्ठा करने वाले कई संतों को देखा है, लेकिन आप उनसे बिल्कुल अलग हैं।"
संत ने अपनी आँखें खोलीं और शांति से कहा, "तुम बिल्कुल ठीक कहते हो, मेरा एक भी शिष्य नहीं है।"

एक सच्चा ज्ञानी या अहंकार-मुक्त व्यक्ति शायद इस तरह के जवाब से बचता। वह संभवतः मुस्कुराता या मौन रहता, क्योंकि उसे किसी की प्रशंसा या आलोचना से कोई फर्क नहीं पड़ता। अहंकार से मुक्त व्यक्ति के लिए, "मेरा कोई शिष्य नहीं है" या "मेरे बहुत शिष्य हैं" ये दोनों ही बातें महत्वहीन होती हैं।

कहानी का सार यह है कि सच्चा संत कौन है, यह जानना बहुत मुश्किल है। जो व्यक्ति एकांत में है, वह भी अहंकार से मुक्त हो, यह जरूरी नहीं है। हो सकता है कि बाहरी दुनिया से दूर रहकर भी, उसके भीतर "मैं सबसे अलग और बेहतर हूँ" का अहंकार छिपा हो।
असली वैराग्य केवल भौतिक चीजों को त्यागने से नहीं आता, बल्कि मन के अंदर से अहंकार को पूरी तरह

मिटाने से आता है।

५४.“तिब्बत की कथा”

तिब्बत में एक बहुत महत्वपूर्ण कथा है। मारपा अपने गुरु के पास गया। मारपा एक बहुत अद्भुत संत हुआ। मारपा नया-नया था, लेकिन श्रद्धा उसकी प्रगाढ़ थी। ऐसी प्रगाढ़ कि एक दिन गुरु ने कहा कि श्रद्धा अगर पूरी हो तो आदमी जल पर भी चल सकता है।

गुरु तो समझा ही रहा था। लेकिन मारपा गया और नदी पर चल गया। और शिष्यों ने देखा मारपा को नदी पर चलते हुए, और ईर्ष्या जगी। उन्होंने भी कोशिश की, नदी पर चलते देख कर। किनारे पर डुबकी खा गए।

मारपा नया-नया था, और शिष्य पुराने थे। और उन्होंने गुरु को आकर कहा कि मारपा नदी पर चल रहा है।

गुरु भी थोड़ा हिचका। वह तो सोचता नहीं था कि कोई चलेगा; वह खुद भी कभी चला नहीं था। यह तो शास्त्र को समझा रहा था। फिर एक दिन यह हुआ कि गुरु समझा रहा था कि श्रद्धा अगर पूर्ण हो और कोई पर्वत से भी कूद पड़े तो खरोंच नहीं लगती।

मारपा गया और कूद गया। और खरोंच न लगी।

और शिष्यों ने भी सोचा, हिम्मत की, लेकिन देखी गहराई; पानी पर तो चलने की कोशिश भी की थी तो किनारे ही डूब गए, वापस लौट आए;

यहां से तो लौटने का भी उपाय नहीं था, यहां से गिरे तो गए। छोटे-मोटे पत्थरों पर से कूद कर देखा, उसी में हाथ-पैर टूट गए। लौट कर गुरु को कहा: गुरु का अहंकार जगा। गुरु कोई गुरु न रहा हो! थोथे गुरु!

ऐसा ही यह मारपा का गुरु रहा होगा। उसे अहंकार जगा कि जब मेरा शिष्य नदी पर चल गया, पहाड़ से कूद गया, तो मैं तो चल ही सकता हूं।

पूछा उन्होंने मारपा को कि तू कैसे चला?
उसने कहा कि कुछ नहीं, बस आपका नाम लिया और चल गया।

गुरु के अहंकार की कोई सीमा न रही कि मेरा नाम जब इतना काम कर सकता है तो मैं भी चल ही सकता हूं!

शिष्यों को इकट्ठा किया और कहा: आओ नदी पर! और गुरु चला कि पहले ही कदम पर डुबकी खा गया। पहाड़ से कूदने की तो फिर उसने कोशिश ही नहीं की।

अंतिम स्वीकारोक्ति

गुरु को डुबकी खाते देख कर मारपा बड़ा हैरान हुआ।
पूछा गुरु से, इसका राज क्या है?

गुरु मारपा के चरणों पर गिर पड़ा और उसने कहा:

"मुझे माफ करो! मेरा अपना कोई अनुभव नहीं है। मैं तो शास्त्र समझा रहा था। लेकिन तुम्हारी श्रद्धा अपूर्व है, कि तुमने झूठे पर भी श्रद्धा की तो भी काम कर गई।

५५.“अहंकार की खोपड़ी”

महात्मा च्वांगत्सु एक कब्रस्तान से गुजर रहे थे। साँझ का वक्त था और हर तरफ एक अजीब सा अँधेरा छा रहा था। तभी अचानक उनकी ठोकर एक खोपड़ी से लगी, जो कब्रिस्तान में पड़ी हुई थी। च्वांगत्सु एकदम घुटने टेककर बैठ गए और उस खोपड़ी को दोनों हाथों से जोड़कर प्रार्थना करने लगे।

उनके शिष्य, जो उनके साथ थे, यह देखकर भौंचक्के रह गए। एक शिष्य ने कहा, "यह आप क्या कर रहे हैं? आप तो पागल नहीं हो गए हैं?" लेकिन च्वांगत्सु चुपचाप प्रार्थना करते रहे। जब उनकी प्रार्थना खत्म हुई, तो एक शिष्य ने उनसे पूछा कि वह क्या कर रहे थे।

शिष्यों को और भी आश्चर्य हुआ। एक शिष्य ने पूछा, "लेकिन क्यों? यह कोई छोटी-मोटी खोपड़ी नहीं है, बल्कि एक बड़े आदमी की खोपड़ी है। यहाँ केवल राजा-महाराजा, पुरोहित, महात्मा, वे ही दफनाए जाते हैं।"

चुवांगत्सु ने बड़े ही शांत भाव से कहा, "मैं इस खोपड़ी से माफ़ी माँग रहा था।"

चुवांगत्सु ने कहा, "हाँ, यह ज़रूर किसी महात्मा या राजा-महाराजा की खोपड़ी होगी। यह तो संयोग की बात है कि आज इसके ऊपर चमड़ी और मांस नहीं है। अगर आज भी इसके भीतर अहंकार का ढोल बज रहा होता, तो मेरे लिए मुश्किल हो जाती। मैं आज बच गया, क्योंकि इसका अहंकार अब धूल में मिल चुका है। अगर इसके भीतर अभी भी अहंकार का ढोल बज रहा होता, और उस चमड़ी लगी होती, और हाथ-पैर चलने की गति होती, तो आज मेरे मारे गए होते। मगर फिर भी मैं तो किसी न किसी बड़े आदमी की खोपड़ी से माफ़ी माँग ही लूँ।"

फिर च्वांगत्सु ने उस खोपड़ी को उठाया और अपने पास ही रखने लगे। शिष्य बार-बार उनसे पूछते थे कि वे उस खोपड़ी को अपने पास क्यों रखते हैं। च्वांगत्सु कहते थे, "इससे मुझे याद बनी रहती है, और तुम्हें भी याद बनी रहेगी।"
वे खोपड़ी को देखकर कहते थे, "हे सज्जन, तुम कभी महाराजा रहे होगे। लेकिन अब तुम्हारी यह हालत देखो! अब तुम इन हालातों पर लात भी नहीं मार सकते। तुम न ठोकर मार सकते हो, न फ़ुटबॉल खेल सकते हो, कुछ भी नहीं कर सकते!"

एक दिन च्वांगत्सु एक नगर से गुजर रहे थे, और उनके हाथ में वही खोपड़ी थी। एक आदमी उन्हें गाली देने लगा। च्वांगत्सु ने उस आदमी की ओर देखकर कुछ नहीं कहा, लेकिन जब उसने खोपड़ी की ओर देखा, तो वह आदमी चिल्लाया, "यह क्या कर रहे हो?"

दिलाते थे कि जीवन में अहंकार का कोई स्थान नहीं है, क्योंकि अंत में सब कुछ क्षणभंगुर है और धूल में मिल जाने वाला है।

चुवांगत्सु ने बड़े ही धैर्य से जवाब दिया, "मैं इस खोपड़ी को देख कर यह सोच रहा हूँ कि कल यह हालत मेरी भी होने वाली है। यह खोपड़ी कल पड़ी होगी। और अगर यही आदमी मुझे लात मारेगा, तो मैं यह भी न कह सकूँगा कि क्यों रे! तूने लात मारी? मैं तुझे मजा चखाऊँगा! तू समझता क्या है कि मैं कौन हूँ? मैं यह भी नहीं कह सकूँगा।"

चुवांगत्सु ने आगे कहा, "तो एक दिन बाद जो बात होनी है, उस पर आज क्यों झगड़ा करना? आज यह गाली दे रहा है, तो दे लेने दो। क्या बनता-बिगड़ता है! यह खोपड़ी तो धूल में मिल जाने वाली है। यह सब तो धूल में गिर जाने वाला है।"

इस तरह च्वांगत्सु ने अहंकार के सार को समझाया। उन्होंने बताया कि अहंकार और जीवन की सारी उपाधियाँ मृत्यु के बाद व्यर्थ हो जाती हैं। राजा-महाराजा, महात्मा और आम आदमी, सबकी अंतिम गति एक ही होती है—धूल में मिल जाना। उस खोपड़ी को अपने पास रखकर वे स्वयं को और अपने शिष्यों को लगातार यह याद

५६.“न्याय: एक क्रांतिकारी दर्शन”

चीन की पाँच हजार साल पुरानी ताओ परंपरा से जुड़ी इस कहानी में लाओत्से के गहन और क्रांतिकारी विचारों की झलक मिलती है। लाओत्से को एक बार एक गाँव में न्यायाधीश का पद संभालने के लिए कहा गया, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। जब उनके सामने पहला मुकदमा आया, तो गाँव के सभी लोग उत्सुक थे कि यह महान दार्शनिक किस तरह से न्याय करेगा।

मुकदमा एक चोरी का था। गाँव के सबसे धनी साहूकार के घर चोर ने सेंध लगाई थी और कुछ कीमती सामान चुराया था। चोर पकड़ा गया था, और उसे लाओत्से के सामने पेश किया गया।
मुकदमे की सुनवाई शुरू हुई। लाओत्से ने पहले चोर से पूछा, "तुमने चोरी क्यों की?"
चोर ने कहा, "महाराज, मैं बहुत गरीब हूँ। मेरे पास अपने और अपने परिवार का पेट भरने के लिए कुछ नहीं था। भूख और लाचारी ने मुझे ऐसा करने पर मजबूर किया।"

फिर लाओत्से ने साहूकार से पूछा, "तुमने इतना धन कहाँ से इकट्ठा किया?"

साहूकार ने गर्व से कहा, "महाराज, यह सब मेरी कड़ी मेहनत और व्यापार की समझ का परिणाम है। मैं बचपन से ही मेहनती और ईमानदार रहा हूँ।"

लाओत्से ने दोनों की बातें सुनीं और कुछ देर तक मौन रहे। फिर उन्होंने अपना फैसला सुनाया। उन्होंने कहा, "चोर को छह महीने की सजा दी जाती है।" गाँव के लोग और साहूकार खुश हुए। लेकिन लाओत्से ने अपनी बात जारी रखी और कहा, "और साहूकार को भी छह महीने की सजा दी जाती है।"

पूरे गाँव में सन्नाटा छा गया। साहूकार तो अवाक रह गया। उसने तुरंत लाओत्से के सामने खड़े होकर पूछा, "महाशय, यह कैसा न्याय है? मैं तो पीड़ित हूँ, मेरे घर चोरी हुई है। मुझे सजा क्यों?" लाओत्से ने गहरी और शांत आवाज़ में कहा, "साहूकार, तुम इस चोरी के असली गुनहगार हो। इस चोर से ज्यादा तुम दोषी हो। तुमने अपनी मेहनत के नाम पर गाँव के सारे धन का एक बड़ा हिस्सा अपने पास इकट्ठा कर लिया है। तुम्हारे इस धन के ढेर ने ही इस गरीब आदमी के मन में लालच और मजबूरी पैदा की।

जब समाज में इतनी असमानता होगी, जब एक आदमी के पास इतना अधिक धन होगा कि वह उसे गिन भी नहीं सकता, और दूसरा आदमी भूख से मर रहा होगा, तो चोरी तो होगी ही। तुम इस अपराध की जड़ हो। तुम धन के उस विशाल सागर के मालिक हो, जिसकी वजह से इस छोटे से तालाब में सूखा पड़ गया। तुम धन्य हो कि मैं तुम्हें बराबर की सजा दे रहा हूँ, वरना तुम्हारा अपराध इस चोर से कहीं बड़ा है।"

यह फैसला सुनकर साहूकार ने इसे अस्वीकार कर दिया और उसने सम्राट के पास अपील करने की धमकी दी। बात सच में सम्राट तक पहुँच गई। सम्राट ने जब लाओत्से के तर्क को सुना, तो वह भी असमंजस में पड़ गया। उसे पता था कि लाओत्से की बात में गहरा सत्य है। अगर लाओत्से का यह न्याय सही है, तो सम्राट स्वयं भी दोषी था, क्योंकि उसका राज-कोष भी इसी तरह लोगों से इकट्ठा किए गए धन से भरा था।

सम्राट ने लाओत्से को बुलाकर कहा, "हे महान दार्शनिक! आपका न्याय का तरीका बहुत गहरा और सही है, लेकिन यह मेरे साम्राज्य के लिए बहुत खतरनाक है। अगर यह बात जनता में फैल गई, तो मेरे साम्राज्य की नींव हिल जाएगी।
कृपया आप अपने इस काम से विदा लें। यह काम आपके लिए नहीं है, यह तो राजनेताओं के लिए है।"

लाओत्से ने शांति से सम्राट को प्रणाम किया और अपने पद से इस्तीफा दे दिया। उन्होंने जो कुछ कहा, वह एक महान सामाजिक और राजनीतिक दर्शन था, जो ढाई हजार साल पहले की सोच से बहुत आगे था। यह न्याय का ऐसा तरीका था जो सिर्फ परिणाम पर नहीं, बल्कि अपराध के कारणों पर भी ध्यान केंद्रित करता था। लाओत्से का यह फैसला आज भी हमें यह सोचने पर मजबूर करता है कि क्या हमारा समाज सच में न्यायपूर्ण है, या हम केवल अपराध को देखते हैं, अपराध को जन्म देने वाले कारणों को नहीं।

५७.“मछली पकड़ने का सबक”

प्राचीन चीन में, एक बार महान दार्शनिक लाओ-त्सू ने मछली पकड़ने का निश्चय किया। उन्होंने अपने हाथों से एक मज़बूत छड़ी बनाई, उसमें रस्सी और एक नुकीला कांटा लगाया। फिर उन्होंने कांटे पर चारा लगाकर शांत नदी किनारे ध्यानपूर्वक बैठ गए।

थोड़ी देर बाद, एक बड़ी मछली ने चारा निगला और कांटा उसके मुंह में फंस गया।

लाओ-त्सू के चेहरे पर मुस्कान आ गई, लेकिन उत्साह में उन्होंने पूरी ताक़त से छड़ी ऊपर खींची। मछली भी पूरी शक्ति लगाकर भागने लगी। दोनों के बीच ज़बरदस्त खिंचाव हुआ, और अचानक 'चर्ररर' की आवाज़ के साथ छड़ी टूट गई। मछली आज़ाद होकर गहरे पानी में ग़ायब हो गई।

लाओ-त्सू ने हार नहीं मानी। उन्होंने एक और छड़ी बनाई और अगले दिन फिर नदी किनारे गए। इस बार जब एक और बड़ी मछली फंसी, तो लाओ-त्सू ने सोचा कि शायद ज़्यादा ताक़त लगाना ग़लत था।

उन्होंने इस बार बेहद धीरे-धीरे छड़ी खींचना शुरू किया। लेकिन मछली ने अपनी ताक़त का इस्तेमाल किया और आसानी से उनके हाथ से छड़ी छुड़ाकर भाग गई। लाओ-त्सू निराश होकर वापस लौट आए।

अगले दिन, उन्होंने तीसरी बार छड़ी बनाई और पूरे मन से नदी किनारे बैठे। इस बार जब तीसरी मछली फंसी, तो लाओ-त्सू ने न तो ज़्यादा ताक़त लगाई और न ही बहुत कम।

उन्होंने उतनी ही ताक़त से छड़ी को ऊपर खींचा, जितनी ताक़त से मछली उसे नीचे खींच रही थी। वह छड़ी को धीरे-धीरे स्थिर रखते हुए मछली की शक्ति को महसूस करते रहे।

काफ़ी देर तक यह खींचातानी चलती रही। लाओ-त्सू ने केवल संतुलन बनाए रखा। जब मछली थककर हार गई, तो लाओ-त्सू ने आसानी से उसे पानी से बाहर खींच लिया।

शाम को, जब उनके शिष्य उनके पास आए, तो लाओ-त्सू ने मुस्कुराते हुए कहा, "आज मैंने संसार के साथ व्यवहार करने का एक महान सिद्धांत सीख लिया है। यह 'समान बल का सिद्धांत' है।"

उन्होंने समझाया, "जब संसार तुम्हें किसी दिशा में खींच रहा हो, तो तुम भी उसी बल के बराबर विपरीत दिशा में जाओ। यदि तुम बहुत ज़्यादा बल लगाओगे, तो तुम टूट जाओगे। और यदि तुम बहुत कम बल लगाओगे, तो संसार तुम्हें बहा ले जाएगा।"

शिष्यों ने लाओ-त्सू के इस सरल लेकिन गहरे ज्ञान को समझा और महसूस किया कि जीवन में भी संतुलन ही सफलता की कुंजी है। न तो अत्यधिक विद्रोह और न ही पूर्ण समर्पण, बल्कि परिस्थितियों को समझते हुए सही और संतुलित प्रयास करना ही सही मार्ग है।

५८.“गुरु को दक्षिणा के मोती”

एक नदी के किनारे, ध्यानमग्न गुरु अपने शिष्य से बहुत प्रेम करते थे। एक दिन, उनके शिष्य ने अपने गुरु के प्रति असीम श्रद्धा और समर्पण की भावना से प्रेरित होकर, उन्हें दक्षिणा देने का निश्चय किया। वह गुरु के पास गया और उनके चरणों के पास बहुमूल्य, चमकदार मोती रख दिए।

गुरु ने अपनी आंखें खोलीं और शिष्य की भेंट स्वीकार की। उन्होंने एक मोती को अपने हाथ में उठाया, लेकिन वह उनकी उंगलियों से फिसलकर नदी में जा गिरा। यह देखकर शिष्य तुरंत नदी में कूद गया। वह मोती को ढूंढने के लिए दिन भर पानी के अंदर और बाहर गोते लगाता रहा, लेकिन उसे वह मोती नहीं मिला।

शाम तक, जब शिष्य पूरी तरह थक चुका था और निराश हो गया था, वह वापस गुरु के पास आया। उसने गुरु को उनके ध्यान से जगाया और पूछा, "गुरुजी, क्या आपने देखा था कि मोती कहाँ गिरा था? यदि आप मुझे वह जगह बता दें, तो मैं उसे ढूंढकर वापस ला सकता हूँ।"

गुरु ने मुस्कुराते हुए दूसरा मोती उठाया और उसे नदी में उसी जगह फेंकते हुए बोले, "वहाँ!"

इस कहानी से हमें यह सीख मिलती है कि ज्ञान और अनुभव ही असली धन है। गुरु ने शिष्य को यह सिखाया कि भौतिक वस्तुओं का मोह क्षणभंगुर होता है, जबकि ज्ञान स्थायी और अमूल्य होता है। गुरु ने शिष्य को यह भी दिखाया कि जीवन में एक ही गलती को बार-बार दोहराने की बजाय, नई शुरुआत करना और आगे बढ़ना अधिक महत्वपूर्ण है।
यह कहानी हमें यह भी बताती है कि गुरु का ज्ञान और मार्गदर्शन ही जीवन में सफलता का सच्चा मार्ग है। गुरु ने अपने शिष्य को एक व्यावहारिक सबक दिया, जो शब्दों से कहीं अधिक गहरा था।

५९.“बोधिधर्म और सम्राट वू”

एक समय की बात है, एक महान बौद्ध भिक्षु थे, जिनका नाम बोधिधर्म था। वे चीन गए, जहाँ के सम्राट ने उनका स्वागत किया। सम्राट को अपने अच्छे कामों पर बहुत गर्व था।

सम्राट ने बोधिधर्म से कहा, "मैंने लोगों के लिए हजारों बुद्ध-विहार और आश्रम बनवाए हैं। मैंने लाखों पेड़ लगाए हैं ताकि राहगीरों को छाया मिले। मैंने गरीबों के लिए मुफ्त भोजन की व्यवस्था की है और हजारों भिक्षुओं को राज्य से मदद दी है। मैंने लोगों को ज्ञान देने के लिए बहुत से शास्त्र छपवाए और बंटवाए हैं। इतना सब कुछ करने के बाद, मुझे बताएं, मुझे इस पुण्य का क्या फल मिलेगा?"

बोधिधर्म ने ऊपर देखा, जैसे कि वे सम्राट के अहंकार को देख रहे हों। उन्होंने बिना हिचकिचाए सीधे कहा, "आप सीधे नर्क जाएंगे।"

सम्राट यह सुनकर चौंक गए। उन्होंने सोचा, "यह कैसा साधु है? कोई इतना कठोर कैसे हो सकता है? मैंने इतना अच्छा काम किया है, और यह कह रहा है कि मैं नर्क जाऊंगा?"

सम्राट ने बोधिधर्म से गुस्से में पूछा, "क्या तुम पागल हो? मैंने इतने सारे पुण्य के काम किए हैं, और तुम कहते हो कि मैं नर्क जाऊंगा?"

बोधिधर्म ने शांति से जवाब दिया, "नर्क या स्वर्ग कर्मों से नहीं, बल्कि करने वाले की भावना से मिलता है। तुमने जो कुछ भी किया, वह तुमने अपनी 'मैं' (अहंकार) से किया है। तुम खुद को उन सब कामों का कर्ता मानते हो। तुमने सोचा 'मैंने' किया। यही तुम्हारी सबसे बड़ी गलती है। जब तक तुम यह सोचते रहोगे कि 'मैंने' किया, तुम अपने अहंकार के जाल में फंसे रहोगे। और यही अहंकार तुम्हें नर्क ले जाएगा।"

सम्राट को यह बात समझ नहीं आई। उन्होंने फिर से कोशिश की और पूछा, "ठीक है, स्वर्ग और नर्क की बात छोड़ो। बस इतना बताओ कि जो मैंने किया, वह पवित्र है या नहीं?"

बोधिधर्म ने मुस्कुराकर कहा, "पवित्र? इससे ज्यादा अपवित्र और क्या हो सकता है? तुमने जो कुछ भी किया, उसका संबंध तुमसे है। जब तक तुम यह सोचते हो कि 'मैंने' किया, वह काम पवित्र नहीं रहता। लेकिन जब कोई काम बिना 'मैं' के भाव के किया जाता है, जब 'उसने' (ईश्वर/प्रकृति) किया है, तब वह पवित्र हो जाता है।"

इस तरह बोधिधर्म ने सम्राट को यह महत्वपूर्ण सबक सिखाया कि कर्मों की पवित्रता उसके पीछे छिपी भावना में होती है, न कि कर्म की विशालता में। सच्चा पुण्य वह है जो अहंकार से मुक्त होकर किया जाए।

.

६०.“तीन हंसते हुए फकीर”

"देखो, वे तीनों पागल आ रहे हैं!" वे न तो प्रवचन देते थे और न ही लोगों को ज्ञान की बातें समझाते थे। उनका मानना था कि उपदेशों में एक तरह की गंभीरता होती है, जो जीवन की सहजता को छीन लेती है।

चीन के देहाती इलाकों में तीन ऐसे फकीर रहते थे, जो अपनी अजीबोगरीब हरकतों के लिए मशहूर थे। उनके बारे में कोई नहीं जानता था कि वे कौन थे, कहाँ से आए थे, या उनका नाम क्या था। वे खुद भी कभी अपने बारे में कुछ नहीं बताते थे। लोग उन्हें प्यार से 'श्री लाफिंग सेंट्स' या 'तीन हंसते हुए फकीर' के नाम से जानते थे। उनकी पहचान उनकी हंसी थी। वे किसी भी गाँव में पहुँचते, तो उनके आगमन की खबर पहले ही फैल जाती,

जब वे गाँव के चौराहे पर पहुँचते, तो अचानक हंसना शुरू कर देते। पहले एक फकीर धीरे-धीरे हंसता, फिर उसकी हंसी तेज होती जाती। उसे देखकर दूसरा हंसने लगता, और फिर तीसरा। जल्द ही, उनकी हंसी की गूंज पूरे चौराहे पर छा जाती। उनकी हंसी में एक जादू था - वह इतनी सच्ची और संक्रामक थी कि जो भी उन्हें सुनता, वह खुद को हंसने से रोक नहीं पाता था।
देखते ही देखते, पूरा गाँव इस हंसी में शामिल हो जाता। बच्चे, बूढ़े, जवान - हर कोई अपनी चिंताएं भूलकर उनके साथ हंसने लगता। जिस गाँव में वे दो-चार दिन रुक जाते, वहाँ का माहौल पूरी तरह बदल जाता। हर घर में खुशी और उल्लास भर जाता।
जब वे फकीर उस गाँव से विदा लेते, तो गाँव वाले कहते, "इन तीन लोगों के कुछ दिनों तक यहाँ रहने से, हमारे वर्षों का बोझ और दुख हल्का हो गया है।" उनकी हंसी ने न जाने कितने लोगों के दिलों से उदासी और निराशा को दूर कर दिया था। वे वास्तव में फकीर थे, पर उनका दान धन-संपत्ति का नहीं, बल्कि हंसी और खुशी का था।

६१.“बोधिधर्म और सम्राट वू”

एक समय की बात है, एक सम्राट जिसका नाम 'वू' था, वह बहुत चिंतित और परेशान रहता था। उसका मन कभी शांत नहीं होता था। उसने बहुत से साधुओं और महात्माओं से मिलकर अपने मन की अशांति के बारे में बताया, लेकिन किसी ने भी उसे शांति नहीं दी।

एक दिन, सम्राट ने बोधिधर्म के बारे में सुना, जो एक महान ज्ञानी थे और जिनके पास मन की अशांति को दूर करने का तरीका था। सम्राट ने बोधिधर्म से कहा, "मैं बहुत परेशान हूँ, मेरा मन शांत नहीं होता। कृपया मुझे शांत होने का कोई उपाय बताएँ।"
बोधिधर्म ने कहा, "रात को ठीक तीन बजे अकेले आ जाना। अपने दरबारियों, सिपाहियों या अंगरक्षकों में से किसी को भी साथ मत लाना। मैं तुम्हारा तीन बजे इंतजार करूँगा, और जब तुम आओ तो एक बात का ख्याल रखना, अपने इस 'मैं' को साथ लेकर आना, क्योंकि मैं इसे शांत ही कर दूँगा।"
सम्राट थोड़ा झिझका। बोधिधर्म के बारे में हजारों अफवाहें थीं कि वह बहुत खतरनाक हैं और उन्होंने एक शिष्य को तब तक स्वीकार नहीं किया जब तक उसने अपना हाथ काटकर नहीं दिया। सम्राट ने सोचा कि रात के अंधेरे में अकेले जाना सुरक्षित नहीं है। लेकिन मन की अशांति ने उसे बेचैन कर रखा था, इसलिए वह जाना चाहता था। यह सोचकर कि "कहीं ऐसा न हो कि यह आदमी मुझे शांत करने का तरीका जानता हो और मैं न जाऊँ!", सम्राट ने जाने का फैसला किया।
वह रात तीन बजे बोधिधर्म के पास पहुँच गया। बोधिधर्म गाँव के बाहर एक मंदिर में ठहरे थे, हाथ में डंडा लिए और दीपक जलाए बैठे थे। उन्होंने सम्राट को देखकर कहा, "आ गए? मैं तो सोच रहा था तुम नहीं आओगे।"
सम्राट ने कहा, "आप यह क्या बात कर रहे हैं? जब मैं आ गया हूँ तो अब और क्या? आप यह बात क्यों बार-बार कहते हैं कि मैं आऊँगा या नहीं?"
बोधिधर्म ने कहा, "यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि अगर तुम अपने 'मैं' को साथ लाओगे तभी मैं उसे शांत कर सकूँगा। तुम अकेले आए हो तो किसे शांत करूँ? अच्छा बैठो और आँखें बंद कर लो। अब उस 'मैं' को खोजो जिसे शांत करना है। और जैसे ही वह मिल जाए, झट से उसे पकड़ लेना और मुझे बता देना। मैं उसे उसी वक्त शांत कर दूँगा।"
सम्राट ने सोचा, "यह कैसी बेतुकी बात कर रहे हैं? 'मैं' को पकड़ना है!" लेकिन वह बोधिधर्म के सामने बैठा रहा और आँखें बंद कर ली। उसने अपने 'मैं', अपनी अशांति, अपने विचारों और अपनी बातचीत को खोजना शुरू किया। उसने अपने भीतर की परतों को एक-एक कर छान डाला, लेकिन उसे कहीं भी अपना 'मैं' नहीं मिला। वह हैरान था।
जैसे-जैसे वह खोजता गया, धीरे-धीरे वह शांत होने लगा। सूर्योदय हो रहा था और उसके चेहरे पर एक अद्भुत आभा थी।
बोधिधर्म ने कहा, "अब बहुत हो गया। आँखें खोलो और जवाब दो। 'मैं' को पकड़ पाए या नहीं?"
सम्राट हँसने लगा। उसने कहा, "नहीं, मैं उसे पकड़ नहीं पाया। लेकिन आपकी महान कृपा है कि आपने मुझे शांत कर दिया। जब वह मिलता ही नहीं, तो फिर अशांति कैसी!"
इस तरह, सम्राट को एहसास हुआ कि उसकी अशांति उसके 'मैं' के कारण थी, जो सिर्फ एक भ्रम था। जब उसने उसे खोजना शुरू किया, तो वह गायब हो गया और उसके मन को शांति मिल गई।

६२.“उपहास और ज्ञान”

एक समय की बात है, लाओत्सु नाम के एक महान दार्शनिक थे, जो अपनी गहरी सोच और असाधारण ज्ञान के लिए जाने जाते थे। वे अक्सर लोगों के बीच घूमते और उन्हें जीवन के गूढ़ रहस्यों के बारे में बताते थे। लेकिन उनकी बातें इतनी अलग थीं कि लोग उन्हें आसानी से नहीं समझ पाते थे।

एक दिन, वे एक गाँव से गुज़र रहे थे। गाँव के लोग अपनी रोज़मर्रा की जिंदगी में इतने व्यस्त थे कि उन्हें किसी भी नई बात को सुनने की फुर्सत नहीं थी। लाओत्सु ने उन्हें इकट्ठा किया और अपने विचार साझा करने शुरू किए। उन्होंने कहा, "जब मैं कुछ सत्य की बात कहता हूँ, तो लोग हँसते हैं, मेरा उपहास करते हैं। तब मैं निश्चित रूप से समझ जाता हूँ कि जो मैंने कहा है, वह सत्य ही होना चाहिए। क्योंकि अगर वह सत्य नहीं होता, तो लोग मेरा उपहास क्यों करते?"

उनकी बात सुनते ही गाँव में हँसी का एक फव्वारा सा फूट पड़ा। एक किसान ने अपने साथी की तरफ देखकर आँख मारी और बोला, "यह कैसा ज्ञानी है, जो कहता है कि लोग उस पर हँसते हैं और वह इसे अपनी जीत समझता है।" दूसरा बोला, "शायद यह पागल हो गया है।
"
लाओत्सु उनकी हँसी पर बिल्कुल भी विचलित नहीं हुए। वे शांत भाव से मुस्कुराते रहे। जब हँसी थोड़ी थमी, तो उन्होंने फिर से कहा, "सोचिए, अगर मैं वही बातें कहता जो आप पहले से जानते हैं, तो आप मेरी प्रशंसा करते, मुझे सम्मान देते। लेकिन क्या उससे आपकी सोच में कोई बदलाव आता? कोई नया द्वार खुलता? नहीं।"

"असल में, आप उस पर हँसते हैं जो आपकी सोच की दीवारों को तोड़ता है। यह हँसी आपके अहंकार की रक्षा के लिए होती है। आपका मन कहता है, 'यह बात तो मेरी समझ से बाहर है, तो यह सच नहीं हो सकती।' और इस प्रतिरोध को छिपाने के लिए आप हँसी का सहारा लेते हैं। यह हँसी ही मेरे लिए सबसे बड़ा प्रमाण है कि मैंने कुछ ऐसा कहा है जो वास्तव में महत्वपूर्ण है।"

वहाँ मौजूद एक बूढ़ा व्यक्ति, जो अपनी समझदारी के लिए जाना जाता था, ने लाओत्सु की बात को ध्यान से सुना। उसे लाओत्सु के शब्दों में एक गहरा अर्थ दिखाई दिया। उसने देखा कि जो लोग सबसे ज़्यादा हँस रहे थे, वे असल में सबसे ज़्यादा भ्रम में थे। वे अपनी अज्ञानता को हँसी के पीछे छिपा रहे थे।

लाओत्सु ने आगे कहा, "सच हमेशा मीठा नहीं होता, वह अक्सर कड़वा होता है। और झूठ अक्सर इतना

लुभावना होता है कि उसे सुनकर लोग तालियाँ बजाते हैं। इसलिए, जब कोई मेरे सच पर हँसता है, तो मैं समझ जाता हूँ कि मैंने एक ऐसी चोट की है जो भविष्य में एक नए विचार को जन्म देगी। और उस चोट का निशान ही मेरी सफलता का प्रतीक है।"

६३.“परम शांति की खोज”

बहुत समय पहले की बात है। कन्फ्यूशियस अपने शिष्यों के साथ बैठे थे और उन्हें जीवन के गूढ़ रहस्यों के बारे में बता रहे थे। उनके शिष्यों में से एक, जिसका नाम मैन्सियस था, बहुत व्याकुल और बेचैन लग रहा था। उसने हिम्मत करके कन्फ्यूशियस से पूछा, "गुरुवर, मैं परम शांति चाहता हूँ। ऐसी शांति, जिसमें कोई बाधा न हो।"

कन्फ्यूशियस ने अपने शिष्य को ध्यान से देखा। उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा, "बेटा, तुम जिस तरह की शांति की तलाश कर रहे हो, वह इस दुनिया में नहीं मिलेगी।"

मैन्सियस यह सुनकर निराश हो गया। उसने पूछा, "तो क्या मुझे कभी भी वह शांति नहीं मिलेगी?"

कन्फ्यूशियस ने उसे समझाया, "मिलेगी, लेकिन जब तुम मर जाओगे। जब तुम्हारा शरीर कब्र में होगा, तब कोई तुम्हें परेशान नहीं कर पाएगा। न कोई शोर-शराबा होगा और न ही कोई बाधा। तब तुम पूरी तरह से शांत और सुरक्षित रहोगे।"

मैन्सियस को यह सुनकर आश्चर्य हुआ। कन्फ्यूशियस ने अपनी बात जारी रखी। "अभी तुम जिंदा हो। अभी जिंदगी के सभी उतार-चढ़ाव देखो, सुख-दुख और संघर्षों का अनुभव करो। मौत तो निश्चित है और वह जरूर आएगी। जब वह आएगी, तो तुम्हें वह परम शांति मिल जाएगी। लेकिन अभी तो जिंदगी है। तो जिंदगी को पूरी तरह से जी लो।"

मैन्सियस को अपने गुरु की बात समझ आ गई। उसे एहसास हुआ कि जिंदगी में शांति का मतलब सभी परेशानियों से दूर भागना नहीं, बल्कि उन्हें स्वीकार करके आगे बढ़ना है। उसने तय किया कि वह जिंदगी के हर पल को पूरी तरह से जिएगा।

६४.“बोलने वाला मुर्गा”

बहुत समय पहले, तिब्बत में एक राजा था जिसने अपने राज्य के लिए एक विशेष मुहर बनवाने का फैसला किया। उसके सलाहकार ने सुझाव दिया कि मुहर पर एक ऐसे मुर्गे का चित्र होना चाहिए जो बोलने वाला लगे। राजा को यह विचार बहुत पसंद आया और उसने तुरंत राज्य के सभी बेहतरीन चित्रकारों को बुलाया।

राज्यभर से महान चित्रकार आए और उन्होंने अपनी सर्वश्रेष्ठ कला का प्रदर्शन किया, लेकिन राजा संतुष्ट नहीं हुआ। वह कुछ और चाहता था, ऐसा कुछ जो अद्भुत हो। तभी राजा को एक बूढ़े चित्रकार के बारे में पता चला, जिसकी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। राजा ने उसे भी दरबार में बुलाया।

जब बूढ़ा चित्रकार दरबार में आया, तो राजा ने उससे मुहर के लिए मुर्गे का चित्र बनाने को कहा। बूढ़े चित्रकार ने विनम्रता से कहा, "महाराज, मैं बहुत बूढ़ा हो गया हूँ। अब शायद मैं इतना बारीक काम नहीं कर पाऊँगा।" राजा ने यह सुनकर कहा, "पर तुम तो महान चित्रकार हो, तुमने इतने सुंदर चित्र बनाए हैं। यह क्यों नहीं बना पाओगे?"

बूढ़े चित्रकार ने कहा, "मुर्गा बनाना कोई मामूली काम नहीं है। इसके लिए मुझे बहुत समय लगेगा। मुझे कम से कम तीन साल चाहिए।" यह सुनकर राजा हैरान हो गया। "तीन साल? सिर्फ एक मुर्गे का चित्र बनाने के लिए?" राजा ने पूछा।

"हाँ, महाराज," बूढ़े चित्रकार ने जवाब दिया। "मुझे मुर्गे की आत्मा को समझना होगा। मैं अपने आप को भूलकर मुर्गा बनना चाहता हूँ। मुझे तीन साल तक मुर्गों के साथ रहना होगा।" राजा ने उसकी बात मान ली और तीन साल तक उसकी देखरेख का इंतज़ाम किया। बूढ़ा चित्रकार जंगलों में चला गया,
जहाँ जंगली मुर्गों का झुंड रहता था। कुछ महीनों बाद, राजा ने अपने कुछ सैनिकों को बूढ़े चित्रकार की खबर लेने भेजा।

सैनिकों ने वापस आकर बताया, "महाराज, वह आदमी पागल हो गया है। वह मुर्गों के झुंड के बीच बैठा रहता है और मुर्गों की तरह ही बांग देता है।" राजा ने एक बार फिर उन्हें भेजा, और इस बार सैनिकों ने आकर बताया कि वह आदमी पूरी तरह से मुर्गों के जैसा व्यवहार कर रहा है। वह मुर्गों के साथ खेलता है और उन्हीं की तरह चलता है। राजा ने सोचा कि शायद वह बूढ़ा चित्रकार सच में पागल हो गया है।

ठीक तीन साल बाद, बूढ़ा चित्रकार दरबार में वापस आया। राजा ने उससे पूछा, "क्या तुम चित्र लाए हो?" चित्रकार ने जवाब नहीं दिया, बल्कि मुर्गों की तरह ज़ोर से बांग दी। राजा क्रोधित हो गया। "यह क्या मज़ाक है? मुझे चित्र चाहिए, मुर्गों की आवाज़ नहीं!" बूढ़े चित्रकार ने मुस्कुराते हुए कहा, "महाराज, चित्र तो मैं एक पल में बना दूँगा। लेकिन असली कला इस तीन साल के अनुभव में है। मैंने इन तीन सालों में खुद को भूलकर मुर्गा बनने की कोशिश की। धीरे-धीरे, मैं खुद को भूल गया और सिर्फ मुर्गे की आत्मा को समझा।"

उसने तुरंत एक कागज़ निकाला और एक ही झटके में एक अद्भुत मुर्गे का चित्र बना दिया। चित्र इतना जीवंत था कि ऐसा लग रहा था मानो वह अभी बोल पड़ेगा। राजा उस चित्र को देखकर दंग रह गया। उसने कहा, "यह चित्र तो अद्भुत है! पर हम इसकी परीक्षा कैसे करें?"

चित्रकार ने जवाब दिया, "महाराज, चित्र को बाहर रखवा दीजिए और कुछ असली मुर्गों को पास लाइए। अगर वे इस चित्र को देखकर भाग जाएँ, तो समझ लीजिएगा कि चित्र में जान है।"

राजा ने ऐसा ही किया। कुछ असली मुर्गों को लाया गया। जब उन्होंने उस चित्र को देखा, तो वे डरकर भाग गए। लेकिन एक मुर्गा था जो नहीं भागा। वह चित्र के पास आकर लड़ने की मुद्रा में खड़ा हो गया और ज़ोर-ज़ोर से बांग देने लगा।
बूढ़े चित्रकार ने राजा से कहा, "देखा महाराज? सिर्फ इंसान ही नहीं, मुर्गा भी पहचान गया कि यह मुर्गा है।" राजा ने आश्चर्यचकित होकर उससे पूछा, "यह तुमने कैसे किया?" चित्रकार ने जवाब दिया, "जब तक मैं मुर्गों को भीतर से नहीं जानूँ, जब तक मैं उनके जीवन को नहीं अपनाऊँ, तब तक मैं उनके प्राणों को कैसे समझ पाऊँगा? इसलिए मुझे मुर्गा बनना पड़ा।"

६५.“श्रम का मूल्य”

लगभग तीन हज़ार साल पहले की बात है। महान दार्शनिक कन्फ्यूशियस एक गाँव से गुज़र रहे थे। उन्होंने देखा कि एक बूढ़ा माली अपने बगीचे में कुएँ से पानी खींच रहा है। यह दृश्य देखकर कन्फ्यूशियस हैरान रह गए। कुएँ से पानी खींचने में बहुत ज़्यादा मेहनत लग रही थी और उस बुज़ुर्ग व्यक्ति के साथ उसका जवान बेटा भी इस मुश्किल काम में लगा हुआ था।

कन्फ्यूशियस ने सोचा, "क्या इस बूढ़े व्यक्ति को नई तकनीकों के बारे में पता नहीं है? आज के ज़माने में लोग घोड़ों और बैलों का इस्तेमाल करके आसानी से पानी खींचते हैं, और ये दोनों अभी भी पुराने ज़माने के तरीकों से मेहनत कर रहे हैं।"
यह देखकर कन्फ्यूशियस उस बूढ़े माली के पास गए और उससे बोले, "मेरे मित्र, क्या तुम्हें नहीं पता कि अब पानी खींचने के लिए नई मशीनें आ गई हैं? अब लोग इस काम के लिए बैलों और घोड़ों का इस्तेमाल करते हैं। तुम दोनों इतनी मुश्किल क्यों उठा रहे हो?"

कन्फ्यूशियस की बात सुनकर बूढ़ा माली घबरा गया और धीरे से बोला, "धीरे बोलो, धीरे बोलो! मुझे तो किसी बात का डर नहीं, लेकिन मेरा जवान बेटा न सुन ले।"

कन्फ्यूशियस को यह सुनकर बहुत हैरानी हुई और उन्होंने पूछा, "तुम्हारे कहने का क्या मतलब है?"

तब बूढ़े माली ने अपनी आवाज़ और धीमी करके कहा, "मुझे सारी नई तकनीकों के बारे में पता है। मैं जानता हूँ कि ये मशीनें लोगों के काम को आसान बनाती हैं। लेकिन मैं नहीं चाहता कि मेरा बेटा श्रम यानी मेहनत से दूर हो जाए। क्योंकि जिस दिन वह मेहनत से दूर हो जाएगा, उसी दिन वह जीवन से भी दूर हो जाएगा।"

यह सुनकर कन्फ्यूशियस शांत हो गए। बूढ़े माली के साधारण शब्दों में एक गहरा ज्ञान छिपा था। वह जानता था कि जीवन का सच्चा आनंद और उसका महत्व केवल सुविधाओं में नहीं, बल्कि मेहनत और श्रम में है।

६६.“लाओत्सु की वाणी”

चीन के एक शांत बाँस के जंगल में, जहाँ हवा में पत्तियों की सरसराहट ही एकमात्र ध्वनि थी, महान दार्शनिक लाओत्सू अपने शिष्यों के साथ बैठे थे। उनके चेहरे पर एक गहरी शांति थी। उन्होंने अपने शिष्यों की ओर देखा और बोले, "मेरे बच्चों, मैं तुम्हें जीवन का एक गहरा रहस्य बताता हूँ।"

"जीओ ऐसे जैसे यह तुम्हारा आखिरी दिन हो, और जिओ ऐसे भी जैसे तुम्हें सदा यहाँ रहना हो।"

लाओत्सू ने देखा कि उनके शिष्य उलझन में पड़ गए। उन्होंने अपनी बात जारी रखी, "यह कोई विरोधाभास नहीं है, बल्कि जीवन का पूर्ण सत्य है।

'जिओ ऐसे जैसे यह तुम्हारा आखिरी दिन हो' का अर्थ है, अपने कर्मों को कल पर मत टालो। हर पल को पूरी तरह से जीओ। अगर तुम्हें किसी से प्रेम करना है, तो अभी करो। अगर तुम्हें क्षमा करना है, तो अभी करो। क्योंकि इस क्षण के बाद क्या होगा, यह हम नहीं जानते। यही पल तुम्हारे हाथ में है।"
लाओत्सू एक क्षण के लिए रुके, फिर बोले, "और 'जिओ ऐसे भी जैसे तुम्हें सदा यहाँ रहना हो' का अर्थ है, धैर्य रखो और अपनी तैयारी में लगे रहो।

एक किसान बीज तो आज बोता है, लेकिन वह जानता है कि फसल आने में समय लगेगा। वह जल्दी नहीं करता, क्योंकि उसे पता है कि हर चीज़ का एक सही समय होता है। ठीक इसी तरह, अपने जीवन के लक्ष्य और परमात्मा से मिलन के लिए तुम कर्म तो करो, लेकिन परिणाम के लिए अनंत धैर्य रखो।"

लाओत्सू ने अपनी आँखें बंद कर लीं और आगे कहा, "परमात्मा से मिलने की तैयारी ऐसी होनी चाहिए जैसे वह अभी आने वाले हैं। हर पल तुम्हें उनकी आहट महसूस हो, उनके कदमों की आहट सुनाई दे। तुम्हारा हृदय इतना आतुर हो कि लगे कि वह बस द्वार पर दस्तक देने ही वाले हैं। यह है तुम्हारी तीव्र इच्छा।"

"लेकिन साथ ही, तुम्हारी प्रतीक्षा इतनी गहरी होनी चाहिए कि अगर वह अनंत काल में भी आएँ, तो तुम्हारे भीतर कोई शिकायत न हो।

यह है तुम्हारा अटूट विश्वास। जब तुम्हारे भीतर यह विरोधाभास एक साथ मौजूद होगा—तीव्र इच्छा और अनंत प्रतीक्षा—तभी तुम जीवन के इस गहरे रहस्य को समझ पाओगे।"

शिष्यों ने लाओत्सू की वाणी को अपने हृदय में धारण कर लिया। उन्होंने समझा कि जीवन में कर्म और धैर्य, इच्छा और प्रतीक्षा का सही संतुलन ही हमें पूर्णता की ओर ले जाता है।

६७.“तिब्बती संतुलन”

एक समय की बात है, एक तिब्बती लामा अपने शिष्यों को जीवन का सबसे गहरा रहस्य सिखा रहे थे। वह रहस्य था संतुलन का। लामा ने बताया, "संतुलन केवल शरीर का नहीं, बल्कि मन और चेतना का भी होता है। इसे समझने के लिए मैं तुम्हें एक बहुत ही सरल अभ्यास बताता हूँ।"
अगले दिन, सुबह होते ही लामा ने सभी शिष्यों को अपने सामने बुलाया। उन्होंने कहा, "आज हम एक ऐसा प्रयोग करेंगे जो तुम्हें आत्म-ज्ञान के करीब ले जाएगा।" सभी शिष्य उत्सुकता से लामा की ओर देख रहे थे। लामा ने कहा, "सबसे पहले, सभी लोग खड़े हो जाएँ और अपनी आँखें बंद करें। अपने दोनों पैरों को थोड़ा फैलाएँ, जैसे आप सुबह स्नान के बाद करते हैं।" शिष्यों ने लामा के निर्देश का पालन किया। "अब," लामा ने धीरे से कहा, "अपने शरीर के वजन को महसूस करो। ध्यान दो कि तुम्हारे शरीर का ज़्यादा भार किस पैर पर पड़ रहा है - बाएँ पर या दाएँ पर?"
एक शिष्य ने कहा, "गुरुदेव, मेरा भार बाएँ पैर पर ज़्यादा है।" दूसरे ने कहा, "मेरा भी।" लामा ने मुस्कुराते हुए कहा, "ठीक है। अब धीरे-धीरे अपने वजन को बाएँ से दाएँ पैर पर ले जाओ। फिर दाएँ से बाएँ पर। इसे धीरे-धीरे करो, जैसे तुम एक नाव को शांत पानी में धीरे-धीरे हिला रहे हो।"
शिष्यों ने वैसा ही किया। कुछ दिनों तक यह अभ्यास चलता रहा। लामा ने उन्हें कहा कि पंद्रह दिनों तक अपने शरीर का ज़्यादातर भार केवल बाएँ पैर पर ही रखें। और फिर, अगले पंद्रह दिनों के लिए इसे बदल दें।
एक महीना बीत गया। लामा ने सभी शिष्यों को फिर से बुलाया। "अब समय आ गया है इस प्रयोग के दूसरे चरण का," लामा ने कहा। "अब तुम्हें यह कोशिश करनी है कि तुम न तो बाएँ पैर पर ज़्यादा भार रखो और न ही दाएँ पर। तुम्हें अपने दोनों पैरों के बीच में बिल्कुल संतुलित खड़ा होना है। ऐसा करो, जैसे तुम दोनों पैरों के बीच एक अदृश्य केंद्र पर स्थिर हो।"
यह सुनने में तो बहुत आसान लगा, लेकिन करने में बहुत कठिन था। शिष्य कोशिश करते रहे। कुछ गिर जाते, कुछ हिलने लगते, लेकिन वे हार नहीं मानते। तीन सप्ताह तक वे इसी अवस्था में बने रहने का प्रयास करते रहे। धीरे-धीरे, उन्होंने महसूस किया कि उनका शरीर एक केंद्र बिंदु पर स्थिर हो रहा था। अब उन्हें अपने पैरों पर कोई भार महसूस नहीं हो रहा था।
जब वे इस स्थिति में पहुँचे, तो एक अद्भुत घटना घटी। उनकी आँखें बंद थीं, लेकिन उन्हें अपने भीतर एक गहरी शांति महसूस हुई। उनका मन शांत हो गया और विचार पूरी तरह से थम गए। उन्होंने पाया कि वे किसी भी बाहरी विचार से प्रभावित नहीं हो रहे थे। लामा ने कहा, "जिस क्षण तुम्हारा भार दोनों पैरों के बीच में संतुलित हो जाता है, उसी क्षण तुम ध्यान की गहरी अवस्था में प्रवेश कर जाते हो।"
एक शिष्य ने पूछा, "गुरुदेव, यह कैसे संभव है?"
लामा ने उत्तर दिया, "जैसे शरीर का संतुलन मिलता है, वैसे ही चेतना का भी संतुलन हो जाता है। जब तुम बाएँ या दाएँ पर नहीं रहते, बल्कि दोनों के बीच में होते हो, तो तुम्हारी चेतना भी संतुलित हो जाती है। तुम्हारी चेतना एक संतुलन की अवस्था में आ जाती है। यह एक ऐसी अवस्था है जहाँ मन के तीर की तरह चलने वाली गति शांत हो जाती है और तुम अपने भीतर की गहराई में उतर जाते हो।"

संतुलन केवल शारीरिक अभ्यास नहीं, बल्कि जीवन का एक मूलभूत सिद्धांत है। जब हम अपने जीवन में संतुलन पाते हैं—न ज़्यादा खुशी, न ज़्यादा दुख; न ज़्यादा लालसा, न ज़्यादा त्याग—तब हम जीवन के असली आनंद को प्राप्त करते हैं। और यही वह परम आनंद है जो हमें स्वयं से जोड़ता है।

६८.“बुद्ध की मूर्ति”

बहुत समय पहले की बात है, एक ज़ेन भिक्षु थे जिनका नाम था इक्का। वे अपने गुरु और अन्य भिक्षुओं के साथ एक मंदिर में रहते थे। इक्का अपनी अजीब और चौंका देने वाली हरकतों के लिए जाने जाते थे। उनके गुरु को पता था कि उनकी हर हरकत के पीछे एक गहरा अर्थ छिपा होता था, जो कि आमतौर पर समझ नहीं आता था।

एक दिन, सर्दियों की कड़ाके की ठंड पड़ रही थी। मंदिर बहुत बड़ा था और अंदर ठंडी हवा घूम रही थी। इक्का के सभी साथी भिक्षु सर्दी से काँप रहे थे। उनके पास आग जलाने के लिए बहुत कम लकड़ी थी। वे सब लाचार और दुखी बैठे थे।
यह देख कर इक्का को बहुत दुख हुआ। वह चुपचाप उठे और मंदिर के मुख्य कक्ष में चले गए। वहाँ, बुद्ध की एक बहुत बड़ी लकड़ी की मूर्ति रखी हुई थी, जिसे सभी बहुत पवित्र मानते थे। इक्का ने उस भारी मूर्ति को उठा कर बाहर आँगन में रख दिया। उनके साथी भिक्षु उन्हें आश्चर्य से देख रहे थे।

बिना किसी की परवाह किए, इक्का ने एक कुल्हाड़ी ली और उस पूजनीय मूर्ति को टुकड़े-टुकड़े कर दिया। फिर उन्होंने उन टुकड़ों से आग जलाई और अपने साथियों को बुलाकर कहा, "आओ भाई, आग ताप लो। इतनी ठंड में बैठे रहना ठीक नहीं।"

उसी समय मंदिर के मुख्य पुजारी वापस आ गए। अपनी सबसे प्यारी और पूजनीय बुद्ध की मूर्ति को जलते देख वे गुस्से से आग-बबूला हो गए।

"इक्का!" वे चीखे, "यह तुमने क्या किया? तुमने बुद्ध को जला दिया!"

इक्का ने शांत भाव से राख में छड़ी घुमाते हुए कहा, "गुरुवर, मैं बुद्ध के अवशेष ढूंढ रहा हूँ।"

पुजारी को लगा कि इक्का उनका मज़ाक उड़ा रहे हैं। वे और भी ज़्यादा क्रोधित हो गए और बोले, "मूर्ख! लकड़ी की मूर्ति में कोई अवशेष नहीं होते!"

तब इक्का ने मुस्कुराते हुए जवाब दिया, "अगर इसमें कोई अवशेष नहीं हैं, तो यह केवल लकड़ी का एक टुकड़ा है। फिर आप इतना परेशान क्यों हो रहे हैं?"

पुजारी इक्का के जवाब से चौंक गए। उन्हें अपनी गलती का एहसास हुआ। इक्का ने उन्हें और बाकी भिक्षुओं को सिखाया था कि वे जिस चीज़ की पूजा कर रहे थे, वह सिर्फ एक प्रतीक थी। असली बुद्धत्व उस लकड़ी में नहीं, बल्कि सबके दिल में मौजूद दया और मानवता में था। इक्का ने उन्हें दिखाया कि जब इंसानों को मदद की ज़रूरत हो, तब सिर्फ पूजा-पाठ या मूर्ति की सुरक्षा से ज़्यादा ज़रूरी इंसानियत का पालन करना है।

इस घटना के बाद, इक्का को और भी सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा क्योंकि उन्होंने सभी को समझाया कि सच्ची श्रद्धा किसी बाहरी वस्तु में नहीं, बल्कि मन की करुणा और दया में होती है।

६९.“जलते शास्त्र”

बहुत समय पहले की बात है, जापान में एक महान ज़ेन गुरु रहते थे जिनका नाम रिंज़ाई था। उनके आश्रम में बहुत से शिष्य आते थे, जो ज्ञान की तलाश में थे। रिंज़ाई का पढ़ाने का तरीका बहुत ही अलग और चौंकाने वाला था। वे शिष्यों को सिर्फ़ किताबें पढ़कर ज्ञान प्राप्त करने के बजाय, सीधे अनुभव से सीखने पर जोर देते थे।

एक दिन की बात है, आश्रम में सभी शिष्य शांत होकर ध्यान कर रहे थे। तभी अचानक, रिंज़ाई ने एक बड़ा-सा ढेर बनाया और उसमें बौद्ध धर्म के सारे पवित्र शास्त्र रख दिए। इसके बाद, उन्होंने एक मशाल उठाई और उन शास्त्रों में आग लगा दी।

पूरा आश्रम धुएँ और जलते हुए कागज की बदबू से भर गया। शिष्य यह देखकर दंग रह गए। उनके मन में गुस्सा और दुख था। वे सोच भी नहीं सकते थे कि उनके गुरु, जो इतने ज्ञानी थे, ऐसा काम कर सकते हैं। वे सभी एक साथ खड़े हो गए और अपने गुरु से पूछने लगे, “आप यह क्या कर रहे हैं? ये हमारे पवित्र ग्रंथ हैं! इन्हें जलाकर आप हमारा और धर्म का अपमान क्यों कर रहे हैं?”

रिंज़ाई ने शांति से उनकी तरफ देखा और मुस्कुराते हुए कहा, "शांत हो जाओ, बच्चों। मैं इन शास्त्रों का अपमान नहीं कर रहा हूँ, बल्कि तुम्हें एक महत्वपूर्ण बात सिखा रहा हूँ।"

वे आगे बोले, "तुम सब इतने सालों से इन किताबों को पढ़ रहे हो, इनकी पूजा कर रहे हो। इन शास्त्रों में इतनी श्रद्धा रखते हो कि तुम इनके असली मकसद को भूल गए हो। ये किताबें सिर्फ़ एक उँगली की तरह हैं जो चाँद की ओर इशारा करती हैं। लेकिन तुम सब उँगली को ही पूजने लगे हो और चाँद को भूल गए हो।"

शिष्य एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। उन्हें गुरु की बात समझ नहीं आ रही थी।

तब रिंज़ाई ने उन्हें और विस्तार से समझाया, "ये ग्रंथ तुम्हें रास्ता बताते हैं, लेकिन रास्ता खुद तुम्हें ही तय करना है। ज्ञान इन पन्नों में नहीं है, ज्ञान तुम्हारे भीतर है। जब तुम इन किताबों में ही अटक जाते हो, तो तुम अपने भीतर झाँकना बंद कर देते हो। मैंने इन शास्त्रों को इसलिए जलाया ताकि तुम्हारी सारी श्रद्धा, तुम्हारा सारा ध्यान, किताबों से हटकर अपने अंदर चला जाए। श्रद्धा बहुत हो चुकी, अब श्रद्धा तोड़नी ज़रूरी है।"

गुरु के इन शब्दों ने शिष्यों की आँखें खोल दीं। वे समझ गए कि गुरु ने यह सब उन्हें किताबों के बंधन से मुक्त करने के लिए किया था, ताकि वे सीधे अपने अनुभव से सच्चाई को जान सकें, न कि सिर्फ़ शास्त्रों के पन्नों में लिखी बातों को याद करके।

इस घटना के बाद, शिष्यों ने गुरु के असली संदेश को समझा और वे केवल किताबों पर निर्भर रहने के बजाय, अपने ध्यान और अनुभव के माध्यम से आत्मज्ञान की राह पर चलने लगे।

७०.“रिंझाई और जिज्ञासु”

एक समय की बात है, एक जिज्ञासु यात्री सच्चे ज्ञान की तलाश में दर-दर भटक रहा था। उसने संसार के सभी शास्त्रों को पढ़ा था, बड़े-बड़े विद्वानों से मिला था, लेकिन उसके मन की प्यास बुझ नहीं रही थी। अपनी यात्रा में वह एक दिन एक शांत आश्रम में पहुंचा, जहाँ एक वृद्ध ज़ेन फकीर रहते थे, जिनका नाम रिंझाई था। उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी।
यात्री ने रिंझाई के सामने झुककर सम्मानपूर्वक पूछा, "हे महात्मन्! मैं वर्षों से ज्ञान की खोज में हूँ। कृपया मुझे बताइए, इस संसार में सबसे महत्वपूर्ण बात सीखने लायक क्या है?"

रिंझाई ने बिना एक पल भी सोचे, उसकी आँखों में देखते हुए कहा, "वॉक् ऑन! आगे बढ़ो।"

यात्री यह सुनकर एकदम चौंक गया। उसकी समझ में नहीं आया कि यह कैसा उत्तर था। उसने सोचा, "यह आदमी मुझसे नाराज़ है क्या? मैं इतनी दूर से ज्ञान की उम्मीद में आया और यह मुझसे कह रहा है, 'आगे बढ़ो'? क्या यह मुझे यहाँ से जाने के लिए कह रहा है?" उसके मन में एक और विचार आया, "या फिर... क्या सच में संसार में सीखने लायक एक ही बात है... आगे बढ़ना?"

वह वहीं खड़ा, गहरी सोच में डूब गया। उसका चेहरा चिंता से भर गया। वह इस उत्तर के दोहरे अर्थों को समझने की कोशिश कर रहा था।

रिंझाई ने उसकी बेचैनी को भाँप लिया। वे मुस्कुराए और बोले, "देखा? तुमने मेरे उत्तर को भी पकड़ लिया। तुम इससे भी आगे नहीं बढ़ सके।"

रिंझाई ने अपनी बात जारी रखी, उनकी आवाज़ में अद्भुत शांति थी, "तुमने सोचा कि मेरा उत्तर एक सिद्धांत है, एक नियम है जिसे तुम्हें समझना है। लेकिन बेटा, ज्ञान कोई चीज़ नहीं जिसे तुम पकड़ सको। जैसे ही तुम किसी विचार या अनुभव को पकड़ते हो, तुम्हारी यात्रा वहीं रुक जाती है।"

"यह संसार एक यात्रपथ है, एक ऐसा मार्ग जिस पर तुम्हें बिना रुके चलते जाना है। यहाँ कुछ भी स्थायी नहीं है, न सुख, न दुख, न ज्ञान। अगर तुम किसी पड़ाव पर रुककर उस पर अपना अधिकार जताओगे, तो तुम्हारी प्रगति रुक जाएगी।"
"संसार में कुछ पकड़ो मत, बस बढ़ते जाओ। एक दिन जब तुम सब कुछ पीछे छोड़ते हुए निरंतर आगे बढ़ोगे, तो वह जगह खुद ब खुद आ जाएगी, जिसको लोग परमात्मा कहते हैं। वह कोई मंजिल नहीं, बल्कि यात्रा की ही एक अवस्था है।"

यात्री ने रिंझाई की बात को गहराई से समझा। उसने महसूस किया कि असली ज्ञान विचारों को पकड़ने में नहीं, बल्कि उन्हें बहने देने में और जीवन की यात्रा पर बिना किसी बोझ के आगे बढ़ते रहने में है। उसने रिंझाई के सामने शीश झुकाया और एक नई समझ के साथ अपनी यात्रा पर आगे बढ़ गया।

७१.“लाफिंग बुद्धा होतेई”

एक ज़ेन फकीर थे, जिनका नाम होतेई था। वे एक साधारण फकीर की तरह नहीं थे, जिनका कोई आश्रम या मठ हो। सड़कें ही उनका घर थीं और जीवन ही उनका मंदिर। वे अपने कंधे पर एक बड़ा-सा झोला लटकाए दिन भर गलियों में घूमते रहते थे। उनके झोले में फल, मिठाई और खिलौने भरे होते थे, जो वे बच्चों को बाँटते रहते। वे बच्चों के साथ नाचते, गाते और हँसते थे। बच्चे भी उनके साथ मस्ती करते हुए ध्यान में खो जाते थे।

होतेई की हंसी संक्रामक थी। वे जहाँ भी जाते, उनके चारों ओर एक खुशी का माहौल बन जाता था। लोग धीरे-धीरे उनका असली नाम भूल गए और उन्हें 'हंसता हुआ बुद्ध' (The Laughing Buddha) कहने लगे। वे कहते थे, "एक पैसा ध्यान के लिए भी!" और लोग खुशी-खुशी उनका झोला पैसों से भर देते थे। कुछ लोग उनसे कहते कि वे किसी मंदिर में रहें और लोगों को धर्म का ज्ञान दें, लेकिन होतेई बस हंसते और कहते, "एक पैसा और, मंदिर के लिए!"

एक दिन, होतेई एक गाँव से गुज़र रहे थे तभी एक धर्म-पंडित ने उन्हें रोककर पूछा, "महाराज, आप इतने सरल व्यक्ति लगते हैं। कृपा करके मुझे बताइए, ध्यान क्या है?"

पंडित को लगा कि होतेई शास्त्रों का हवाला देंगे और ध्यान की परिभाषाएँ सुनाएंगे। लेकिन होतेई ने कुछ और ही किया। उन्होंने पंडित के प्रश्न पर खिलखिलाकर हँसना शुरू कर दिया और फिर अचानक उन्होंने अपना झोला ज़मीन पर गिरा दिया।

जैसे ही झोला गिरा, होतेई अपनी आँखों में खो गए और उनके चेहरे पर एक अलौकिक आनंद छा गया। उनकी आँखों से आनंद के आँसू बहने लगे और उनका शरीर वहाँ बस एक पुतला बनकर रह गया—वे खुद कहीं और ही चले गए थे। यह उनका ध्यान था, जो उन्होंने अपने कार्य के माध्यम से प्रकट किया था।

पंडित ने सोचा, "वाह! यह भी तो उत्तर हो सकता था, लेकिन मैं इसे समझ नहीं पाया।"

पंडित, जो कि शब्दों और परिभाषाओं में उलझा हुआ था, होतेई के इस मौन उत्तर को नहीं समझ सका। उसने होतेई को हिलाकर दोबारा पूछा, "यह तो ठीक है, लेकिन ध्यान का व्यावहारिक रूप क्या है?"

पंडित यह नहीं समझ पाया कि होतेई ने जो उत्तर दिया था, वह अव्यावहारिक नहीं, बल्कि सबसे अधिक व्यावहारिक था!

होतेई एक बार फिर ज़ोर से हँसे, अपने झोले को वापस कंधे पर रखा, पंडित को झुककर सम्मान दिया और अपनी यात्रा पर निकल पड़े। पंडित हैरान होकर उन्हें देखता रहा।

होतेई के कदमों की ध्वनि में वही शांति और स्थिरता थी, जो उनके मौन में थी। यह उनके दूसरे प्रश्न का उत्तर था। होतेई ने यह दिखाया कि ध्यान कोई अलग चीज़ नहीं है, बल्कि यह आपके हर कार्य में, आपकी हर साँस में मौजूद है। ध्यान कोई सिद्धांत नहीं, बल्कि जीने का एक तरीका है। असली ध्यान का अभ्यास किसी विशेष आसन में नहीं, बल्कि अपने रोजमर्रा के जीवन में शांति और आनंद के साथ चलने में है।

७२.“एक नन्हे लामा”

यह कहानी है एक पाँच साल के बच्चे की, जो आगे चलकर एक प्रसिद्ध लामा बना। उसकी यात्रा की शुरुआत हुई एक साधारण रात से, जब उसके पिता ने उसे बुलाया और कहा, "कल सुबह चार बजे तुम्हें विद्यापीठ के लिए जाना होगा। तुम्हारी विदाई के लिए न तो मैं मौजूद रहूँगा और न ही तुम्हारी माँ।"

पिता के शब्दों में एक अजीब-सी कठोरता थी। उन्होंने समझाया कि माँ की आँखों में आँसू आ जाएंगे, और यदि तूने रोती हुई माँ को देखा, तो तेरा मन कमजोर हो जाएगा। उन्होंने कहा, "हमारे घर में ऐसा कोई पैदा नहीं हुआ जो पीछे मुड़कर देखता हो। यदि तूने घोड़े पर बैठकर एक बार भी पीछे देखा, तो समझ लेना कि इस घर से तेरा फिर कोई नाता नहीं।" पिता के ये शब्द तलवार की धार की तरह तीखे थे।

अगली सुबह, जब नौकरों ने उस बच्चे को घोड़े पर बिठाया, तो उसके दिल में एक तूफान चल रहा था। एक तरफ अपने घर, अपने माता-पिता और अपनी माँ के आँसुओं को देखने की इच्छा थी, और दूसरी तरफ पिता की कठोर चेतावनी। उस पाँच साल के बच्चे ने अपने आँसुओं को रोका और आगे की ओर ही देखता रहा। उसने पीछे मुड़कर नहीं देखा, क्योंकि उसे पता था कि ऐसा करने से वह हमेशा के लिए अपने घर और परिवार से दूर हो जाएगा।

जब वह विद्यापीठ पहुँचा, तो वहाँ के प्रधान ने उसकी एक और परीक्षा ली। उन्होंने कहा, "यह एक बहुत कठिन प्रवेश परीक्षा है। तुम्हें दरवाज़े पर आँखें बंद करके बैठना होगा। जब तक मैं वापस न आऊँ, तब तक तुम अपनी आँखें नहीं खोलोगे। अगर तुमने आँखें खोल लीं, तो तुम्हें वापस लौटा दिया जाएगा।"

बच्चा आज्ञाकारी था, और उसने तुरंत आँखें बंद कर लीं। समय बीतता गया। एक घंटा, दो घंटे, तीन घंटे, चार घंटे...।

बाहर चहल-पहल थी। बच्चे खेल रहे थे, कोई उसे परेशान कर रहा था, मक्खियाँ उसे सता रही थीं। उसके मन में कई बार ख्याल आया कि वह अपनी आँखें खोलकर देखे, लेकिन उसे अपने पिता के शब्द याद थे। उसे पता था कि यह सिर्फ एक परीक्षा नहीं, बल्कि उसके जीवन की सबसे बड़ी चुनौती है।

छह घंटे बाद, जब वह पूरी तरह थक चुका था और निराश हो रहा था, तब गुरुजी वापस आए। उन्होंने बच्चे को देखा और उसे गले से लगा लिया। गुरुजी ने कहा, "तुम परीक्षा में पास हो गए हो। तुम एक सच्चे संकल्पवान व्यक्ति बनोगे।" उन्होंने बच्चे को बताया कि जिन बच्चों ने उसे परेशान किया था, वे दरअसल उसे परेशान नहीं कर रहे थे, बल्कि उन्हें ऐसा करने के लिए ही भेजा गया था ताकि उसके धैर्य की परीक्षा हो सके।

वर्षों बाद, जब वही बच्चा एक महान लामा बन गया, तो उसने अपनी आत्मकथा में इन घटनाओं का ज़िक्र किया। उसने लिखा, "उस समय मुझे लगा था कि मेरे साथ बहुत कठोरता बरती गई, लेकिन अब मैं उन सभी का आभारी हूँ। उन कठोर अनुभवों ने मेरे भीतर की सोई हुई इच्छाशक्ति को जगा दिया। वह कठोरता मेरे जीवन की सबसे बड़ी सीख साबित हुई, जिसने मुझे आत्मज्ञान की ओर बढ़ने का साहस दिया।"

जीवन की सबसे बड़ी सीख और शक्ति अक्सर सबसे कठिन परिस्थितियों से ही मिलती है।

७३.“तिब्बत के एक फकीर”

यह कहानी तिब्बत के एक फकीर, मिलारेपा, और एक युवक की है। एक युवक मिलारेपा के पास आया और उनसे कोई मंत्र या शक्ति प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की। मिलारेपा ने उसे समझाते हुए कहा कि वे कोई जादूगर नहीं, बल्कि एक फकीर हैं। मंत्र तो जादूगरों और मदारी के पास होते हैं। लेकिन वह युवक जितना ही मिलारेपा के मना करने पर निराश हो रहा था, उतना ही उसका विश्वास और मजबूत होता जा रहा था कि इस साधु के पास कुछ तो जरूर है। वह हर दिन मिलारेपा के पास आता और अपनी ज़िद पर अड़ा रहता।

आखिरकार, युवक से परेशान होकर मिलारेपा ने उसे एक कागज पर एक मंत्र लिखकर दिया। उन्होंने कहा, "इसे ले जाओ और आज अमावस्या की रात को अँधेरे में पाँच बार पढ़ लेना। बस पाँच बार पढ़ने से ही तुम्हें सिद्धि मिल जाएगी। जाओ और मेरा पीछा छोड़ो।"

युवक खुशी से भागा। वह अभी मंदिर की सीढ़ियाँ पूरी तरह उतरा भी नहीं था कि मिलारेपा ने उसे वापस बुलाया और कहा, "मेरे मित्र, एक बात बताना भूल गया। इस मंत्र को पढ़ते समय तुम्हें बंदरों का स्मरण नहीं आना चाहिए।" युवक ने आत्मविश्वास से कहा, "बेफिक्र रहिए! आज तक मुझे जिंदगी में कभी बंदरों का ख्याल नहीं आया। मेरा बंदरों से कोई नाता-रिश्ता नहीं है।" यह कहकर वह चला गया।

लेकिन जैसे ही वह युवक सीढ़ियाँ उतरा, उसे भूल हो गई। उसे बंदरों का स्मरण आने लगा। वह घबरा गया। उसने आँखें बंद कीं तो उसे बंद बंदर दिखाई दिए। जब उसने आँखें खोलीं तो उसे पेड़ों की हलचल में भी बंदरों का आभास होने लगा। वह घर पहुँचा, लेकिन फिर भी बहुत परेशान था। उसके लिए यह समझना मुश्किल था कि उसे बंदरों का ख्याल क्यों आ रहा है। रात भर वह इसी परेशानी में रहा। वह मंत्र पढ़ने बैठा। उसने आँखें बंद कीं और हाथ जोड़े, लेकिन उसका मन बंदरों से घिरा हुआ था।

उसने हर तरह से कोशिश की। कभी पद्मासन में बैठा, कभी सिद्धासन में, भगवान का नाम लिया, गिड़गिड़ाया, रोया... लेकिन वे बंदर उसका पीछा नहीं छोड़ रहे थे।

सुबह वह युवक पूरी तरह हताश हो चुका था। वह रोते हुए मिलारेपा के पास गया और उनसे कहा, "यह मंत्र वापस ले लें। मुझसे बहुत बड़ी गलती हो गई। अगर मंत्र में बंदर ही रुकावट थे, तो आपने पहले क्यों नहीं बताया?" उसने कहा, "मुझे कभी बंदर याद भी नहीं आए थे, लेकिन रात भर उन्होंने मेरा पीछा किया।"

मिलारेपा ने मुस्कुराते हुए कहा, "बंदर तुमसे ऐसे संयुक्त हो गए हैं क्योंकि तुमने ही आग्रह किया था कि बंदर नहीं होने चाहिए। तुमने अपने मन को बंदरों से दूर करना चाहा, इसीलिए वे तुम्हारे मन में और ज़्यादा मौजूद हो गए। तुम्हारा मन बंदरों से बचना चाहता था, और तुम्हारा मन बंदर ही बन गया। अब इस जन्म में इस मंत्र के साथ बंदर भी संयुक्त हो गए हैं। अगले जन्म में आना, शायद तब यह मंत्र सिद्ध हो सके।"

जब हम किसी चीज से बहुत बचना चाहते हैं, तो वह चीज हमारे मन में और गहरी बैठ जाती है। जिसे हम नकारते हैं, वही हमें और भी ज़्यादा प्रभावित करता है।

७४.“हाथी और मक्खी”

एक विशाल हाथी अपनी शांति और ताकत के लिए जाना जाता था। एक दिन, एक छोटी, फुर्तीली मक्खी उसके कान के पास आकर भिनभिनाने लगी।

"तुम इतने बड़े और शक्तिशाली हो, लेकिन फिर भी बहुत धीरे चलते हो," मक्खी ने कहा। "क्या तुम्हें पता है कि मैं एक मिनट में पूरे जंगल का चक्कर लगा सकती हूँ?"

हाथी ने कोई जवाब नहीं दिया और शांति से आगे बढ़ता रहा।

मक्खी को गुस्सा आया। उसने फिर कहा, "मैं तुम्हारे कान के अंदर घुस सकती हूँ और तुम्हें परेशान कर सकती हूँ। तुम मुझे रोक भी नहीं पाओगे।"

हाथी अब भी चुप था। वह एक नदी के किनारे रुका और अपनी सूंड से पानी पीकर अपने शरीर पर डालने लगा।

मक्खी ने देखा कि उसकी बातों का हाथी पर कोई असर नहीं हो रहा है, तो उसने सोचा कि अब उसे अपनी असली शक्ति दिखानी चाहिए। वह हाथी के कान में घुसने की कोशिश करने लगी। लेकिन हाथी ने अपने कान को हल्के से हिलाया और मक्खी दूर जा गिरी।

हाथी ने मक्खी की तरफ देखा और कहा, "तुम्हारे पास बहुत ऊर्जा है, लेकिन तुम इसे बेकार की बातों में खर्च कर रही हो। अपनी ऊर्जा को सही जगह इस्तेमाल करो, और फिर तुम सच में शक्तिशाली बन सकती हो।"

सच्ची शक्ति बाहरी दिखावे या शोर में नहीं होती, बल्कि आंतरिक शांति और आत्म-नियंत्रण में होती है। ज़ेन के अनुसार, अपने मन को शांत रखना और अपनी ऊर्जा को सही दिशा में लगाना ही असली ज्ञान है।

७५.“एक घोड़े की कहानी”

एक ज़ेन मास्टर अपने दो शिष्यों के साथ यात्रा कर रहे थे। रास्ते में एक नदी आई और उन्हें पार करना था। मास्टर ने एक शिष्य से पूछा, "तुम इस नदी को कैसे पार करोगे?"

पहले शिष्य ने सोचा और कहा, "मैं एक मजबूत नाव बनाऊंगा, और उससे इसे पार करूँगा।"
मास्टर ने सिर हिलाया।

फिर उन्होंने दूसरे शिष्य से पूछा, "तुम इस नदी को कैसे पार करोगे?"

दूसरे शिष्य ने कहा, "मैं तैरकर पार करूँगा, क्योंकि मेरे पास कोई नाव नहीं है।"

मास्टर ने फिर से सिर हिलाया।

तभी, वे एक घोड़े के पास से गुज़रे जो घास चर रहा था। मास्टर ने घोड़े को देखा और अचानक उससे पूछा, "तुम इस नदी को कैसे पार करोगे?"

घोड़े ने बिना कुछ सोचे, नदी में छलांग लगा दी और आसानी से तैरकर पार हो गया।

मास्टर अपने शिष्यों की तरफ मुड़े और कहा, "तुम लोग सिर्फ़ सोच रहे थे कि नदी को कैसे पार किया जाए। तुम सिर्फ़ उपाय खोज रहे थे, लेकिन घोड़े ने सिर्फ़ एक काम किया - वह पार हो गया।

ज़ेन का मार्ग सोचने का नहीं, बल्कि करने का है। ज्ञान के बारे में बात करने से बेहतर है कि तुम उसे अपने जीवन में उतारो।"

७६.“ज़ेन मास्टर की मृत्यु”

एक प्रसिद्ध ज़ेन मास्टर की मृत्यु होने वाली थी। उनके शिष्य उनके चारों ओर बैठे थे, दुखी और उदास। वे जानते थे कि मास्टर की मृत्यु का समय निकट है, इसलिए वे उनसे अंतिम शिक्षा प्राप्त करना चाहते थे।

एक शिष्य ने रोते हुए पूछा, "मास्टर, आपने हमें जीवन का सही मार्ग दिखाया। अब जब आप जा रहे हैं, तो हमें अंतिम उपदेश दें। हमें क्या करना चाहिए?"

मास्टर ने अपने शिष्यों को देखा और बोले, "तुम बहुत दुखी क्यों हो? यह तो जीवन का एक हिस्सा है।"

एक और शिष्य ने पूछा, "आपकी मृत्यु के बाद आपका ज्ञान हमें कैसे मिलेगा?"

मास्टर ने अपने कमजोर हाथों से पास पड़ी एक मोमबत्ती उठाई और उसे जला दिया। फिर उन्होंने मोमबत्ती की लौ को अपने दूसरे हाथ की मोमबत्ती से छूकर जला दिया। उन्होंने पहली मोमबत्ती बुझा दी और दूसरी मोमबत्ती के साथ कमरे को रोशन कर दिया।

मास्टर ने कहा, "देखो, पहली मोमबत्ती बुझ गई, लेकिन उसकी रोशनी अब भी कमरे में मौजूद है। ज्ञान शरीर में नहीं, बल्कि मन में होता है। यह एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक ऐसे ही फैलता है।"

शिष्यों को यह बात समझ में आ गई। उन्होंने महसूस किया कि गुरु की शिक्षा उनके भीतर है, और वह हमेशा उनके साथ रहेगी।
सच्चा ज्ञान किसी व्यक्ति के शरीर में नहीं, बल्कि उसके विचारों और शिक्षाओं में होता है। ज्ञान शाश्वत है और यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चलता रहता है। यह हमें यह भी सिखाता है कि हमें गुरु की शारीरिक उपस्थिति पर निर्भर नहीं रहना चाहिए, बल्कि उनकी शिक्षाओं को अपने जीवन में उतारना चाहिए।

७७.“एक उंगली का ज़ेन”

एक ज़ेन मास्टर थे जिनका नाम जुशी था। जब भी कोई शिष्य उनसे ज़ेन के बारे में कुछ पूछता, तो वह कुछ भी नहीं बोलते थे, बस अपनी एक उंगली उठाते थे।

एक दिन, उनके आश्रम में एक नया लड़का आया। उसने देखा कि मास्टर सिर्फ एक उंगली उठाकर ही अपने शिष्यों को जवाब देते हैं। यह देखकर, उसने सोचा कि वह भी ऐसा ही करेगा।

जब एक शिष्य ने लड़के से पूछा कि मास्टर क्या सिखाते हैं, तो लड़के ने भी अपनी एक उंगली उठा दी।

एक और शिष्य ने आकर उस लड़के से पूछा, "गुरु ने क्या सिखाया है?" लड़के ने फिर से अपनी एक उंगली उठा दी।

यह बात जल्द ही ज़ेन मास्टर जुशी तक पहुँच गई। जुशी ने लड़के को बुलाया। जब लड़का उनके पास आया, तो मास्टर ने उससे पूछा, "तुम ज़ेन के बारे में क्या जानते हो?"

जब लड़के ने अपनी एक उंगली उठाई, तो मास्टर ने तुरंत एक चाकू से उसकी उंगली काट दी।

दर्द से चिल्लाते हुए, लड़का भागा। मास्टर ने उसे पीछे से आवाज़ दी, "रुको!"

जब लड़का रुका, तो मास्टर ने पूछा, "तुम ज़ेन के बारे में क्या जानते हो?"

जैसे ही लड़का अपनी एक उंगली उठाकर जवाब देने वाला था, उसे याद आया कि उसकी उंगली तो कट चुकी है। वह समझ गया कि असली ज्ञान सिर्फ़ प्रतीकों या बातों में नहीं, बल्कि सीधे अनुभव में होता है।

सच्चा ज्ञान सिर्फ़ बातों या प्रतीकों में नहीं होता, बल्कि अनुभव में होता है। जब तक हम किसी चीज़ को अनुभव नहीं करते, तब तक हमारा ज्ञान अधूरा होता है।

जुशी ने उस लड़के को यह सिखाया कि ज़ेन का ज्ञान शब्दों से परे है; यह एक अनुभव है जिसे सीधे महसूस किया जाना चाहिए।

७८.“रस्सी का टुकड़ा”

एक ज़ेन मास्टर अपने शिष्यों के साथ ध्यान कर रहे थे, जब एक शिष्य ने उन्हें बीच में ही टोक दिया।

"मास्टर," शिष्य ने पूछा, "मैं बहुत भ्रमित हूँ। मैं नहीं जानता कि मुझे अपनी आध्यात्मिक यात्रा में कहाँ से शुरू करना चाहिए।"

मास्टर ने कुछ नहीं कहा, बस उन्होंने अपनी जेब से एक रस्सी का छोटा सा टुकड़ा निकाला और उसे मेज पर रख दिया।

शिष्य ने कुछ देर तक रस्सी को देखा और फिर फिर से पूछा, "क्या इसका मतलब यह है कि मुझे खुद को इस उलझन से बाहर निकालना चाहिए?"

मास्टर ने सिर हिलाया।

एक और शिष्य ने कहा, "शायद यह हमें सिखाता है कि हम सब एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, जैसे इस रस्सी के धागे।"
मास्टर ने फिर से सिर हिलाया।

फिर तीसरा शिष्य बोला, "मास्टर, मुझे लगता है कि यह हमें बताता है कि जीवन एक उलझन है, और हमें इसे वैसे ही स्वीकार करना चाहिए।"

मास्टर मुस्कुराए। उन्होंने धीरे से रस्सी उठाई और उसे मोड़कर एक गाँठ लगा दी।
"यह गाँठ क्या है?" मास्टर ने पूछा।

शिष्य ने कहा, "यह एक गाँठ है।"

मास्टर ने कहा, "नहीं, यह एक रस्सी का टुकड़ा है।"

यह सुनकर, सभी शिष्य हैरान रह गए।

७९.“पानी का प्याला”

एक युवा शिष्य अपने ज़ेन मास्टर के पास गया। वह बहुत परेशान था और उसने कहा, "गुरुजी, मैं बहुत दुखी हूँ। मुझे लगता है कि जीवन बहुत मुश्किल और दुख से भरा है। मैं अपनी सारी परेशानियों को लेकर बहुत बोझ महसूस करता हूँ।"

मास्टर ने कुछ नहीं कहा। उन्होंने बस शिष्य को एक ग्लास पानी लाने के लिए कहा। जब शिष्य पानी का ग्लास लाया, तो मास्टर ने उसमें मुट्ठी भर नमक डाला और उसे हिलाया।

"अब इस पानी को पियो," मास्टर ने कहा।

शिष्य ने एक घूँट लिया और तुरंत थूक दिया। उसने अपना चेहरा सिकोड़ते हुए कहा, "यह बहुत कड़वा है, मास्टर! इसे पीना असंभव है।"

मास्टर मुस्कुराए और उन्होंने शिष्य को नदी के पास ले जाने के लिए कहा। वे दोनों नदी के किनारे गए। मास्टर ने एक और मुट्ठी भर नमक लिया और उसे नदी के पानी में मिला दिया।

"अब इस पानी को पियो," मास्टर ने कहा।

शिष्य ने अंजलि में पानी लिया और उसे पी लिया। पानी का स्वाद ताज़ा और सामान्य था।

मास्टर ने शिष्य से पूछा, "जब तुमने पहली बार पानी पिया, तो वह कड़वा क्यों था?"

शिष्य ने जवाब दिया, "क्योंकि पानी कम था और नमक बहुत ज़्यादा।"

मास्टर ने कहा, "यह दुख भी ऐसा ही है। जीवन में दुख और परेशानियाँ एक गिलास पानी में नमक की तरह हैं। अगर तुम्हारा मन एक गिलास की तरह है, तो दुख बहुत कड़वा लगेगा। लेकिन अगर तुम्हारा मन एक नदी की तरह है, तो दुख का एहसास बहुत कम होगा।"

हमारी परेशानियाँ और दुख जीवन में हमेशा रहेंगे, लेकिन हम उन्हें कैसे महसूस करते हैं, यह हमारे मन की स्थिति पर निर्भर करता है।

हमें अपने मन का विस्तार करना चाहिए। जब हमारा मन शांत, विशाल और खुला होता है, तो दुख और परेशानियाँ हमें ज़्यादा प्रभावित नहीं करतीं।

८०.“खाली डोंगी”

प्राचीन जापान में, एक ज़ेन भिक्षु था जो अपनी गहरी अंतर्दृष्टि और शांत स्वभाव के लिए जाना जाता था। वह अक्सर एकांत में समय बिताता था, प्रकृति के करीब, अपने मन को शांत करने और आंतरिक शांति खोजने के लिए। उसका पसंदीदा स्थान एक शांत नदी का किनारा था, जहाँ वह अपनी छोटी सी डोंगी (नाव) में बैठकर घंटों ध्यान में लीन रहता था।
एक दोपहर, भिक्षु अपनी डोंगी में बैठा था, उसकी आँखें बंद थीं और उसका मन बाहरी दुनिया से पूरी तरह विमुख था। नदी का पानी धीरे-धीरे बह रहा था, पक्षियों की चहचहाहट और हवा में पत्तों की सरसराहट ही एकमात्र आवाज़ें थीं जो उसके ध्यान को भंग नहीं कर रही थीं, बल्कि उसे और गहरा कर रही थीं। वह अपनी श्वास पर केंद्रित था, हर आती-जाती साँस के साथ अपने अस्तित्व की गहराई में उतर रहा था।

अचानक, एक तेज़ धक्का लगा! उसकी डोंगी किसी चीज़ से ज़ोर से टकराई। भिक्षु का ध्यान भंग हो गया। उसकी आँखों में तुरंत गुस्सा आ गया। "कौन है जो मुझे ऐसे परेशान कर रहा है?" उसने सोचा। "इतना शांत माहौल है, और फिर भी कोई आकर मेरे ध्यान को भंग कर रहा है! कितना लापरवाह व्यक्ति होगा!" उसके मन में झुंझलाहट और क्रोध की लहरें उठने लगीं। वह अपनी आँखें खोलने वाला था, एक फटकार लगाने के लिए तैयार था।

जैसे ही उसने अपनी आँखें खोलीं, उसने देखा कि वहाँ कोई नहीं था। उसकी डोंगी से टकराने वाली चीज़ कोई और डोंगी थी, जो खाली थी! उसमें कोई व्यक्ति नहीं था, कोई नाविक नहीं था। वह डोंगी बस नदी के बहाव के साथ बहती हुई आ गई थी और उसकी डोंगी से टकरा गई थी।

भिक्षु कुछ पल तक उस खाली डोंगी को देखता रहा। फिर, एक गहरी मुस्कान उसके चेहरे पर फैल गई और वह ज़ोर से हँसने लगा। उसकी हंसी नदी के शांत वातावरण में गूँज उठी। उसका सारा गुस्सा, उसकी सारी झुंझलाहट एक पल में गायब हो गई थी, जैसे कि वह कभी थी ही नहीं। उसे तुरंत अपनी मूर्खता का एहसास हुआ। उसका गुस्सा किसी और पर नहीं, बल्कि एक खाली डोंगी पर था। यह खाली डोंगी वास्तव में उसके खुद के मन का एक शक्तिशाली प्रतीक बन गई थी।

८१.“सबसे अच्छा शिष्य"

एक ज़ेन मठ में एक बहुत ही बूढ़ा और ज्ञानी ज़ेन मास्टर रहते थे। उन्होंने अपना पूरा जीवन अपने शिष्यों को ध्यान और ज़ेन के सिद्धांतों को सिखाने में समर्पित कर दिया था। अब वह बहुत बीमार और कमजोर हो गए थे, और उनके जीवन के अंतिम दिन नजदीक थे।

एक शाम, उनके कई शिष्य मास्टर के बिस्तर के चारों ओर जमा हुए। वे बहुत चिंतित और दुखी थे। वे जानते थे कि उनके गुरु अब ज़्यादा समय तक उनके साथ नहीं रहेंगे, और इसलिए वे उनसे अंतिम शिक्षा प्राप्त करना चाहते थे।

एक शिष्य ने साहस करके पूछा, "गुरुजी, हम सभी आपके शिष्य हैं, और हम सबने अपनी पूरी निष्ठा से आपका अनुसरण किया है। हम जानना चाहते हैं कि हम में से सबसे अच्छा शिष्य कौन है, ताकि हम उसका अनुसरण कर सकें और आपकी शिक्षाओं को आगे बढ़ा सकें।"

मास्टर ने कुछ नहीं कहा, उन्होंने बस अपनी आँखें बंद कर लीं और उनके चेहरे पर एक हल्की मुस्कान आ गई। शिष्यों को लगा कि मास्टर ने उनकी बात सुन ली है, और वे आपस में फुसफुसाने लगे।

एक महत्वाकांक्षी शिष्य ने कहा, "यह मैं हूँ, इसमें कोई शक नहीं। मैं रोज़ सुबह सबसे पहले उठता हूँ और सबसे ज़्यादा समय ध्यान करता हूँ।"

दूसरे ने कहा, "नहीं, यह तुम नहीं हो। गुरुजी ने हमें सिखाया है कि ध्यान केवल एक अभ्यास है। सच्चा ज़ेन जीवन में होता है। मैंने हर दिन सबसे ज़्यादा काम किया है, सबसे ज्यादा सेवा की है, और कभी किसी से शिकायत नहीं की।"

तीसरा शिष्य, जो बहुत पढ़ा-लिखा था, बोला, "तुम दोनों गलत हो। ज़ेन का सार समझने में है, न कि अभ्यास या काम में। मैंने गुरुजी की सारी शिक्षाओं और शास्त्रों को सबसे गहराई से समझा है।"

जैसे-जैसे वे आपस में बहस करते गए, उनकी आवाज़ें तेज़ होती गईं, और उनके चेहरे पर अहंकार और जलन के भाव साफ दिखाई दे रहे थे। वे सब एक-दूसरे से खुद को बेहतर साबित करने की कोशिश कर रहे थे।

तभी, एक और शिष्य, जो अभी तक चुप था, कमरे में आया। उसने तुरंत स्थिति को भाँप लिया। उसने देखा कि मास्टर को प्यास लगी है और उनका गला सूख रहा है। बिना किसी से कुछ कहे या बहस में पड़े, उसने मास्टर का खाली प्याला उठाया। वह चुपचाप बाहर गया, उसमें ताज़ा और ठंडा पानी भरा, और धीरे से मास्टर को पीने के लिए दिया।

मास्टर ने धीरे से पानी पिया और अपनी आँखें खोलीं। उन्होंने उस शिष्य की ओर देखा जिसने उन्हें पानी दिया था, और एक गहरी, शांत मुस्कान के साथ कहा, "मेरा सबसे अच्छा शिष्य वह है, जो यह नहीं सोचता कि वह मेरा सबसे अच्छा शिष्य है।"

यह सुनकर, सभी शिष्य शांत हो गए। वे समझ गए कि मास्टर ने उन्हें क्या सिखाया है। उनका सबसे अच्छा शिष्य वह नहीं था जो सबसे ज्यादा ध्यान करता था, या सबसे ज्यादा काम करता था, या सबसे ज्यादा पढ़ता था। बल्कि, वह था जो दूसरों की ज़रूरतों को देखता था और चुपचाप उनकी सेवा करता था, बिना किसी प्रशंसा की उम्मीद के।

८२.“दो भिक्षु और किसान”

दो युवा ज़ेन भिक्षु एक पहाड़ी रास्ते से यात्रा कर रहे थे। एक भिक्षु बहुत विद्वान था और उसने ज़ेन शास्त्रों का गहराई से अध्ययन किया था। दूसरा भिक्षु शांत स्वभाव का था और जीवन को जैसा है वैसा ही स्वीकार करता था।

वे चलते-चलते एक छोटे से गाँव में पहुँचे। उन्होंने देखा कि एक बूढ़ा किसान अपनी गाय को लेकर एक दलदल में फंसा हुआ है। गाय डर से चिल्ला रही थी और किसान उसे बाहर निकालने की कोशिश कर रहा था।

विद्वान भिक्षु ने किसान को देखा और कहा, "अरे, तुम यह क्या कर रहे हो? तुम्हें ध्यान देना चाहिए कि तुम कहाँ जा रहे हो।" वह अपनी यात्रा पर आगे बढ़ गया।

लेकिन शांत भिक्षु रुक गया। उसने किसान से पूछा, "क्या मैं आपकी मदद कर सकता हूँ?"

किसान ने कहा, "हाँ, अगर आप इस रस्सी के दूसरे सिरे को पकड़ लें, तो हम मिलकर इसे बाहर खींच सकते हैं।"

दोनों ने मिलकर जोर लगाया और कुछ देर की मेहनत के बाद, उन्होंने गाय को दलदल से बाहर निकाल लिया। किसान ने भिक्षु को धन्यवाद दिया। भिक्षु ने मुस्कुराया और अपनी यात्रा पर आगे बढ़ गया।

कुछ दिनों बाद, दोनों भिक्षु एक ज़ेन मास्टर के पास पहुँचे। मास्टर ने उनके स्वागत के बाद पूछा, "तुमने अपनी यात्रा में क्या सीखा?"

विद्वान भिक्षु ने गर्व से कहा, "गुरुजी, मैंने सीखा कि हमें हमेशा सावधानी से चलना चाहिए और दूसरों की गलतियों को पहचानना चाहिए।"

मास्टर ने सिर हिलाया।

शांत भिक्षु ने कहा, "गुरुजी, मैंने सीखा कि हमें दूसरों की मदद करनी चाहिए, भले ही वे गलती कर रहे हों।"
मास्टर मुस्कुराए और कहा, "सच्चा ज्ञान दूसरों को बताने में नहीं, बल्कि खुद करने में है।"

८३.“एक जिज्ञासु शिष्य”

एक युवा शिष्य एक प्रसिद्ध ज़ेन मास्टर के पास गया। वह अपने आध्यात्मिक ज्ञान को लेकर बहुत महत्वाकांक्षी था। उसने मास्टर से पूछा, "गुरुजी, क्या आप मुझे ज़ेन का सबसे गहरा रहस्य बता सकते हैं?"

मास्टर कुछ देर चुप रहे। उन्होंने बस शिष्य को देखा और कहा, "तुम्हें ज़ेन के बारे में क्या जानना है?"

शिष्य ने कहा, "मैं जानना चाहता हूँ कि मुझे कब और कैसे ज्ञान मिलेगा। मुझे लगता है कि मैं बहुत मेहनत कर रहा हूँ, लेकिन कुछ हो नहीं रहा।"

मास्टर ने कहा, "ठीक है। मेरे साथ आओ।"

मास्टर शिष्य को अपने साथ आश्रम के बाहर ले गए। वे एक कुएँ के पास पहुँचे। मास्टर ने कहा, "कुएँ से पानी निकालो और उसे पियो।"

शिष्य ने पानी निकाला और उसे पिया। फिर मास्टर ने कहा, "पानी कैसा था?"

शिष्य ने कहा, "पानी बहुत ताज़ा और मीठा था।"

मास्टर ने कहा, "क्या तुम जानते हो कि इस कुएँ में कहाँ-कहाँ पानी है?"

शिष्य ने हैरान होकर कहा, "नहीं, गुरुजी। यह तो असंभव है। मुझे कैसे पता चलेगा कि पानी कहाँ है?"

मास्टर ने मुस्कुराते हुए कहा, "तुम्हें पानी के बारे में जानने की ज़रूरत नहीं है। तुम्हें सिर्फ इतना जानने की ज़रूरत है कि यह कुआँ है और इसमें पानी है।

जब तुम्हें प्यास लगती है, तो तुम कुएँ में पानी ढूंढने नहीं जाते, बल्कि पानी निकालते हो और उसे पीते हो।"

मास्टर ने फिर कहा, "ज़ेन का सबसे गहरा रहस्य यह नहीं है कि ज्ञान कहाँ है, बल्कि यह है कि जब तुम्हें ज्ञान की ज़रूरत हो, तो वह तुम्हें मिल जाएगा। तुम ज्ञान की तलाश में मत भटको, बस अपना जीवन जियो।

८४.“बांस का तना”

एक ज़ेन मास्टर एक युवा शिष्य को ध्यान और ज़ेन के अभ्यास के बारे में सिखा रहे थे। शिष्य बहुत मेहनती था, लेकिन वह हमेशा ज्ञान के बारे में सवाल पूछता रहता था। वह जानना चाहता था कि 'सच्ची ज्ञानोदय' (Enlightenment) क्या है और इसे कैसे प्राप्त किया जाता है।

एक दिन, शिष्य मास्टर के पास गया और पूछा, "गुरुजी, मैंने ध्यान और शास्त्रों का अभ्यास किया है, लेकिन मुझे अभी भी लगता है कि मैं सच्चा ज्ञान नहीं पा रहा हूँ। क्या आप मुझे बता सकते हैं कि मैं 'सत्य' तक कैसे पहुँचूँ?"

मास्टर ने कुछ नहीं कहा। वह बस उठे और शिष्य को अपने साथ आश्रम के बाहर ले गए। वे एक तालाब के पास पहुँचे, जहाँ एक लंबा, सीधा बांस का तना खड़ा था।

मास्टर ने उस बांस के तने को देखा और कहा, "क्या तुम देख रहे हो, यह बांस का तना कितना सीधा और खाली है?"
शिष्य ने कहा, "हाँ, गुरुजी।"

मास्टर ने फिर कहा, "ज़ेन का मार्ग भी ऐसा ही है। यह बांस की तरह सीधा है, लेकिन यह खाली है।"
शिष्य को यह बात समझ नहीं आई। उसने कहा, "मुझे यह समझ नहीं आया, गुरुजी।"

मास्टर ने मुस्कुराते हुए कहा, "तुम्हें लगता है कि तुम्हें ज्ञान खोजने के लिए बहुत मेहनत करनी होगी। तुम हर चीज़ को जटिल बना रहे हो। लेकिन ज़ेन का मार्ग ऐसा नहीं है। यह सरल, सीधा और खाली है।"

मास्टर ने अपनी उंगली से उस बांस के तने को छुआ और कहा, "देखो, यह बांस का तना कितना सीधा है। यह कभी मुड़ता नहीं है, यह कभी झुकता नहीं है। यह हमेशा अपने आप में होता है।"

फिर मास्टर ने कहा, "लेकिन सबसे ज़रूरी बात यह है कि यह खाली है। यह खाली है, इसलिए यह हवा को अपने भीतर से गुज़रने देता है। यह खाली है, इसलिए यह अपनी जड़ों से आसमान तक बढ़ सकता है।"

मास्टर ने शिष्य को देखा और कहा, "तुम्हारा मन भी इस बांस के तने की तरह होना चाहिए। खाली और सीधा। ज्ञान के बारे में मत सोचो, बस जियो। जब तुम्हारा मन खाली होगा, तो ज्ञान अपने आप तुम्हारे भीतर से होकर गुज़रेगा।"

८५.“ज़ेन मास्टर डोकेन”

एक ज़ेन मास्टर थे जिनका नाम डोकेन था। वह अपने शिष्यों को बहुत ही सरल तरीके से ज़ेन सिखाते थे। एक दिन, उनके पास एक बहुत ही मेहनती भिक्षु आया, जो वर्षों से ध्यान का अभ्यास कर रहा था।

भिक्षु ने डोकेन से पूछा, "गुरुजी, मैं ध्यान का अभ्यास करता हूँ, शास्त्रों का अध्ययन करता हूँ और आपका हर आदेश मानता हूँ। लेकिन मुझे अभी भी ज्ञानोदय (Enlightenment) नहीं मिल रहा है। कृपया मुझे बताएं कि मैं क्या करूँ?"
डोकेन ने भिक्षु की तरफ देखा और कुछ नहीं कहा। वह बस शांत रहे।

भिक्षु को लगा कि मास्टर ने उसकी बात नहीं सुनी, इसलिए उसने अपनी बात दोहराई, "गुरुजी, मैं बहुत मेहनत कर रहा हूँ, लेकिन मुझे लगता है कि मैं कुछ खो रहा हूँ। मुझे और क्या करना चाहिए?"

डोकेन ने फिर भी कुछ नहीं कहा। वह बस उठे और टहलने लगे। जब वह वापस आए, तो भिक्षु ने फिर से वही सवाल पूछा।

इस बार, डोकेन ने अपनी छड़ी उठाई और उससे ज़मीन पर एक रेखा खींची। फिर उन्होंने रेखा के एक सिरे पर एक बिल्ली और दूसरे सिरे पर एक चूहा बनाया।

भिक्षु को लगा कि मास्टर ने उसे कोई गूढ़ रहस्य बताया है। उसने कहा, "गुरुजी, क्या इसका मतलब है कि मुझे अपने मन को बिल्ली की तरह चूहे पर केंद्रित करना चाहिए?"

डोकेन ने छड़ी को हटा दिया और कहा, "नहीं। इसका मतलब है कि जब तुम ध्यान करते हो, तो बस ध्यान करो। जब तुम खाते हो, तो बस खाओ। जब तुम सोते हो, तो बस सो जाओ।"

भिक्षु को अचानक अपनी गलती का एहसास हुआ। वह समझ गया कि वह ध्यान करते समय ज्ञान के बारे में सोच रहा था, खाने के समय ध्यान के बारे में सोच रहा था, और सोते समय ज्ञानोदय के बारे में सोच रहा था। वह कभी भी पूरी तरह से एक क्षण में नहीं था।

८६.“कर्म ही ज्ञान है।”

एक बार एक ज़ेन गुरु के आश्रम में एक भिक्षु आया, जो बहुत ही ज्ञान का भूखा था। वह गुरु के पास जाकर बोला, "गुरुजी, मैं ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ।

मुझे बताइए कि मुझे क्या पढ़ना चाहिए, क्या साधना करनी चाहिए, और क्या ध्यान करना चाहिए?"

गुरु ने उसे ध्यान से देखा और कहा, "ठीक है, लेकिन अभी मुझे भूख लगी है। तुम मेरे लिए रसोई से कुछ चावल ले आओ।"

भिक्षु रसोई में गया और चावल ले आया। गुरु ने चावल खाए और फिर भिक्षु से कहा, "जाओ, अब तुम बर्तन धो दो।"

भिक्षु ने अनिच्छा से बर्तन धोए और वापस आया। गुरु ने उससे फिर कुछ और काम करने को कहा। दिन भर गुरु ने भिक्षु को छोटे-मोटे काम दिए, जैसे पानी लाना, लकड़ी काटना, और बाग़ीचे की देखभाल करना।

भिक्षु निराश होने लगा, क्योंकि वह ज्ञान प्राप्त करने आया था, न कि ये सब काम करने।

शाम को, जब भिक्षु पूरी तरह थक चुका था, गुरु ने उससे कहा, "अब तुम बैठो।"

भिक्षु बैठ गया। गुरु ने उससे पूछा, "क्या तुम जानते हो कि ज्ञान क्या है?"

भिक्षु ने कहा, "नहीं, गुरुजी। मैं तो दिन भर बस काम करता रहा।"

गुरु ने मुस्कुरा कर कहा, "तुमने दिन भर जो कुछ भी किया, वही ज्ञान है। जब तुम चावल लाए, तो तुमने सिर्फ़ चावल नहीं लाए, बल्कि तुमने ध्यान से देखा कि कितना लाना है।

जब तुम बर्तन धो रहे थे, तो तुमने सिर्फ़ बर्तन नहीं धोए, बल्कि तुमने पानी के स्पर्श और बर्तन की चिकनाहट को महसूस किया। ज्ञान को किताबों में नहीं पाया जाता, बल्कि हर उस काम में पाया जाता है जो हम पूरी जागरूकता से करते हैं।"

८७.“अमीर व्यापारी”

यह कहानी एक अमीर और सफल व्यापारी की है, जिसके पास सब कुछ था - पैसा, संपत्ति, और समाज में सम्मान।

लेकिन उसके पास एक चीज़ नहीं थी - मन की शांति। उसका मन हमेशा अशांत रहता था, जैसे समुद्र में लहरें उठती रहती हैं। वह हमेशा तनाव में रहता था, भविष्य की चिंताओं में डूबा रहता था, और अपनी सफलताओं का आनंद नहीं ले पाता था।
इसी अशांति से तंग आकर वह एक ज़ेन गुरु के पास पहुँचा। गुरु ने उसकी सारी बातें शांति से सुनीं। उन्होंने व्यापारी को सलाह देने के बजाय, उसे एक व्यावहारिक सबक सिखाने का फैसला किया।

गुरु व्यापारी को अपने साथ नदी के किनारे ले गए। यह नदी जीवन के प्रवाह का प्रतीक है। गुरु ने एक बड़ा और भारी पत्थर उठाया।

यह पत्थर व्यापारी के मन के बोझ, उसकी चिंताओं और तनाव का प्रतीक था। गुरु ने पत्थर को नदी में फेंक दिया। जैसे ही पत्थर पानी में गिरा, वह तुरंत डूब गया और पानी की सतह पर कुछ भी नहीं बचा।

यह एक सीधा और सरल कार्य था, लेकिन इसमें एक गहरा संदेश छिपा था।

गुरु ने व्यापारी से कहा कि वह नदी में जाकर उस पत्थर को बाहर निकाल लाए। व्यापारी ने तुरंत जवाब दिया कि यह असंभव है। पत्थर भारी है और वह पानी के नीचे कहाँ है, यह भी पता नहीं।

यहीं पर गुरु ने उसे जीवन का सबसे महत्वपूर्ण सबक दिया। उन्होंने कहा, "तुमने खुद ही अपने सवाल का जवाब दे दिया है।"

गुरु ने समझाया कि हमारी चिंताएं और दुख भी उस पत्थर की तरह होते हैं। जब हम उन्हें अपने मन में रखते हैं, तो वे एक भारी बोझ बन जाते हैं।

हम उन्हें दबाकर रखते हैं, और वे हमें अंदर ही अंदर परेशान करते रहते हैं। हम सोचते हैं कि उन्हें दबाने से वे गायब हो जाएँगे, लेकिन इसके बजाय, वे और ज़्यादा गहरे डूब जाते हैं।

गुरु ने व्यापारी से कहा कि जिस तरह नदी से उस डूबे हुए पत्थर को निकालना असंभव है, उसी तरह मन में दबी हुई पुरानी चिंताओं और तनाव को पूरी तरह से मिटाना भी मुश्किल है। असली रास्ता उन्हें छोड़ना है, जैसे हम पत्थर को नदी में फेंक देते हैं।

८८.“ज्ञानी भिक्षु का भ्रम”

यह कहानी एक ऐसे भिक्षु की है जिसने अपना जीवन ज्ञान की तलाश में समर्पित कर दिया था। उसने बहुत सी धार्मिक किताबें पढ़ी थीं, उसने कई वर्षों तक ध्यान और साधना की थी।

उसे लगता था कि ज्ञान एक ऐसी चीज़ है जिसे मेहनत और अध्ययन से हासिल किया जा सकता है, ठीक वैसे ही जैसे स्कूल में परीक्षा की तैयारी की जाती है।

वह ज़ेन गुरु के पास आया, यह सोचकर कि गुरु उसे कुछ गुप्त मंत्र या कोई विशेष तकनीक सिखाएँगे जिससे वह सच्चा ज्ञान प्राप्त कर सकेगा।

जब भिक्षु ने गुरु से ज्ञान के बारे में पूछा, तो गुरु ने उसे कोई जटिल जवाब नहीं दिया। इसके बजाय, उन्होंने एक बहुत ही सरल सवाल पूछा: "क्या तुमने कभी जंगल में कोई फूल खिलते हुए देखा है?"

गुरु का सवाल भिक्षु को भ्रमित कर गया। उसे लगा कि गुरु उसके सवाल को टाल रहे हैं। लेकिन गुरु ने उससे पूछा कि जब वह फूल देखता है, तो क्या वह उसके बारे में सोचता है?

भिक्षु का जवाब था कि वह केवल उसे देखता है। इस जवाब में ही कहानी का सार छिपा था। जब हम किसी चीज़ को बिना किसी विचार या पूर्वाग्रह के देखते हैं, तो हम उसे उसके असली रूप में देखते हैं।

हम उस पर कोई लेबल नहीं लगाते, जैसे 'यह सुंदर है', 'यह खराब है', या 'इसका रंग क्या है?'। हम बस उस पल में होते हैं और उसे बिना किसी मानसिक बाधा के महसूस करते हैं।

गुरु ने समझाया कि ज्ञान और धारणाएं अक्सर हमें सच देखने से रोकती हैं। हम अपने दिमाग को विचारों, सिद्धांतों और पूर्वाग्रहों से भर देते हैं। जब हम किसी भी नई चीज़ को देखते हैं, तो हम उसे अपनी पुरानी धारणाओं की 'फिल्टर' से देखते हैं।

यह वैसा ही है, जैसे हम एक रंगीन चश्मा पहनकर दुनिया को देखते हैं। हम सोचते हैं कि हम सच देख रहे हैं, लेकिन हम केवल वही देख रहे हैं जो हमारा चश्मा हमें दिखाता है।

८९.“मास्टर का फटा लबादा”

एक बार की बात है, एक गाँव में एक बहुत ही प्रसिद्ध ज़ेन मास्टर रहते थे, जिनका नाम हर जगह ज्ञान और बुद्धिमानी के लिए लिया जाता था। वे बेहद विनम्र और शांत स्वभाव के थे। लोग दूर-दूर से उनके पास ज्ञान प्राप्त करने आते थे।

लेकिन उनकी एक ख़ास बात थी, जो कई लोगों को हैरान करती थी। वे हमेशा एक बहुत ही पुराने और पैबंद लगे हुए, गंदे लबादे पहने रहते थे। यह लबादा उनके शरीर पर ढीला-ढाला लटका रहता था, जैसे कि उसका कोई महत्व ही न हो।

एक दिन एक युवा भिक्षु उनके पास आया, जो अपनी साधना और ज्ञान पर बहुत गर्व करता था। उसके कपड़े साफ-सुथरे और नए थे।

उसने मास्टर के गंदे लबादे को देखकर नाक-भौं सिकोड़ी और पूछा, "गुरुजी, आप इतने महान और ज्ञानी हैं। लोग आपका इतना सम्मान करते हैं।

क्या आप एक साफ-सुथरा और नया लबादा नहीं पहन सकते? आपका यह गंदा लबादा आपके पद के अनुकूल नहीं लगता।"

गुरु ने उस अहंकारी भिक्षु की तरफ़ देखा, लेकिन उन्होंने कोई उपदेश नहीं दिया। वे उसे अपने साथ पास की नदी के किनारे ले गए। गुरु ने कहा, "जाओ, इस नदी में जाकर अपनी सबसे प्यारी चीज़ों को फेंक दो।"

भिक्षु ने गर्व से जवाब दिया, "गुरुजी, मैंने अपनी सभी भौतिक चीज़ों को त्याग दिया है। मेरे पास तो कुछ भी नहीं है जिसे मैं फेंक सकूँ।"

गुरु मुस्कुराए और उन्होंने अपने गंदे लबादे की तरफ़ इशारा करते हुए कहा, "तुम जो भी हो, वही तुम्हारे अहंकार का सबसे बड़ा प्रतीक है। मेरे ये गंदे कपड़े मुझे हर पल याद दिलाते हैं कि मैं कुछ भी नहीं हूँ।

ये मुझे मेरे अहंकार से दूर रखते हैं। मेरे ये कपड़े न तो साफ हैं और न गंदे; ये बस हैं। जब तक तुम खुद को 'मैं' और 'मेरा' की भावना से अलग नहीं करोगे, तब तक तुम कभी भी अपने आपको नहीं जान पाओगे।"

९०.“ज़ेन गुरु बाशो”

एक बार एक बहुत ही प्रसिद्ध ज़ेन गुरु, जिसे बाशो कहा जाता था, अपने आश्रम के बगीचे में टहल रहे थे। उनका एक शिष्य, जो बहुत ही उत्साही और जिज्ञासु था, उनके पीछे-पीछे चल रहा था।

जब वे एक बहुत ही सुंदर गुलाब के पौधे के पास पहुँचे, तो शिष्य ने गुरु से पूछा, "गुरुजी, क्या आप मुझे ज्ञान की सबसे गहरी सच्चाई के बारे में बता सकते हैं?"

गुरु ने बिना कुछ कहे, गुलाब के फूल की तरफ़ देखा। फिर उन्होंने उसे छुआ और उसकी पंखुड़ियों को महसूस किया। उन्होंने गुलाब की खुशबू को भी महसूस किया।

फिर गुरु ने अपने शिष्य से पूछा, "क्या तुमने गुलाब की खुशबू महसूस की?"
शिष्य ने कहा, "हाँ, गुरुजी।"

गुरु ने मुस्कुराते हुए कहा, "तुम्हें क्या लगता है, गुलाब की खुशबू कहाँ से आती है? क्या वह गुलाब से आती है, या वह हवा में है, या वह मेरे हाथ से आती है?"

शिष्य चुप हो गया। उसे समझ नहीं आ रहा था कि गुरु क्या कहना चाहते हैं।

गुरु ने कहा, "गुलाब की खुशबू न गुलाब से आती है, न हवा से, और न ही मेरे हाथ से। गुलाब की खुशबू वहाँ है जहाँ तुम उसे महसूस करते हो। तुम उसे महसूस नहीं कर सकते, जब तक कि तुम वहाँ न हो।"

९१.“दो जेन शिष्य”

एक बार दो जेन शिष्य अपने गुरु के पास आए। गुरु ने पहले शिष्य से पूछा, "जब तुम सुबह बगीचे में जाते हो, तो क्या देखते हो?"

शिष्य ने कहा, "मास्टर, मैं सुंदर फूल, हरे पेड़ और चिड़ियों को देखता हूँ। मैं प्रकृति की अद्भुत रचना को देखता हूँ।"
गुरु ने मुस्कुराते हुए कहा, "बहुत अच्छा।"

फिर उन्होंने दूसरे शिष्य से पूछा, "जब तुम सुबह बगीचे में जाते हो, तो क्या देखते हो?"
दूसरे शिष्य ने कहा, "मास्टर, मैं सिर्फ एक बगीचा देखता हूँ।"

पहला शिष्य हैरान हो गया और उसने दूसरे से पूछा, "क्या तुम अंधे हो? क्या तुम फूलों की खूबसूरती, पत्तों की हरियाली और चिड़ियों की मधुर आवाज़ नहीं देखते?"

दूसरा शिष्य शांत रहा।

कुछ दिन बाद, दोनों शिष्यों ने एक साथ ध्यान किया। ध्यान के बाद, गुरु ने फिर से दोनों से वही सवाल पूछा। पहले शिष्य ने फिर वही जवाब दिया, "मैं फूल, पेड़ और चिड़ियों को देखता हूँ।"

दूसरे शिष्य ने शांत भाव से कहा, "मास्टर, अब मैं न तो फूलों को देखता हूँ, न पेड़ों को, और न ही चिड़ियों को। मैं केवल स्वयं को देखता हूँ, जो देख रहा है।"

गुरु ने पहले शिष्य की ओर मुड़कर कहा, "इसे देखो। यह जेन का सार है। पहला शिष्य अभी भी दुनिया में अटका हुआ है। वह बाहर देख रहा है। दूसरा शिष्य अब भीतर की ओर मुड़ गया है। उसने बाहरी दुनिया को देखना छोड़ दिया है और वह अपनी चेतना को देख रहा है।"

९२.“पानी के ऊपर कमल”

यह कहानी एक युवा साधक के बारे में है जो ज्ञान की तलाश में था। वह एक प्रसिद्ध ज़ेन गुरु के पास गया और उनसे पूछा, "गुरुजी, मुझे ज्ञान और शांति कैसे मिलेगी? मुझे जीवन में स्थिरता और उद्देश्य कैसे मिलेगा?"

गुरु ने मुस्कुराते हुए उसे अपने पीछे आने का इशारा किया। वे दोनों एक शांत तालाब के किनारे पहुँचे। तालाब में कमल के कई फूल खिले हुए थे, जो पानी के ऊपर बहुत सुंदर लग रहे थे।

गुरु ने एक फूल की ओर इशारा किया और युवा साधक से कहा, "देखो, इस कमल को। यह कहाँ उगता है?"
साधक ने जवाब दिया, "गुरुजी, यह पानी में, कीचड़ में उगता है।"

गुरु ने पूछा, "और यह क्या दिखाता है?"

साधक ने कहा, "यह पानी के ऊपर है, बहुत सुंदर और साफ है, कीचड़ की गंदगी का इस पर कोई असर नहीं है।"
गुरु ने सिर हिलाया और कहा, "ठीक यही जीवन का रहस्य है। हम सभी जीवन के 'कीचड़' में रहते हैं - दुख, लालच, गुस्सा, और संघर्ष। यह सब हमारे चारों ओर है, ठीक वैसे ही जैसे कमल के चारों ओर कीचड़ है।"

"लेकिन," गुरु ने आगे कहा, "कमल की तरह, हमें इन सब से ऊपर उठना सीखना चाहिए। हमें अपने विचारों और भावनाओं को इस तरह से विकसित करना चाहिए कि जीवन की परेशानियाँ और नकारात्मकता हमें छू न सकें।"

गुरु ने अपनी उंगली कमल की पंखुड़ी पर रखी और कहा, "कमल का फूल कीचड़ में होता है, लेकिन वह कीचड़ को नहीं अपनाता। वह अपने आप को उससे अलग रखता है। इसी तरह, हमें दुनिया में रहते हुए भी दुनिया की नकारात्मकता को अपने अंदर आने से रोकना चाहिए।"

युवा साधक ने पूछा, "लेकिन यह कैसे संभव है, गुरुजी?"

गुरु ने जवाब दिया, "ध्यान और जागरूकता से। अपनी आंतरिक शांति पर ध्यान केंद्रित करो। जब तुम अपने भीतर शांत होते हो, तो बाहर की कोई भी चीज़ तुम्हें परेशान नहीं कर सकती। यह ठीक वैसे ही है जैसे कमल का फूल पानी की सतह पर तैरता है, बिना गीला हुए।"

९३.“सही समय पर”

एक ज़ेन गुरु के पास तीन शिष्य थे, जो बहुत उत्सुक और मेहनती थे। वे तीनों अक्सर गुरु से पूछते थे, "गुरुजी, हमें आत्मज्ञान कब मिलेगा? हम कब बुद्धत्व प्राप्त करेंगे?"

गुरु हमेशा मुस्कुराते और कहते, "सही समय पर।"

शिष्य थोड़े निराश होते, क्योंकि उन्हें लगता था कि गुरु उनके सवाल का सीधा जवाब नहीं दे रहे हैं।

एक दिन, वे तीनों गुरु के साथ बगीचे में काम कर रहे थे। गुरु ने एक पौधे की ओर इशारा किया और एक शिष्य से पूछा, "क्या तुम इस पौधे को खींचकर बड़ा कर सकते हो?"

शिष्य ने जवाब दिया, "नहीं गुरुजी, ऐसा करने से यह मर जाएगा।"

गुरु ने कहा, "ठीक है। लेकिन अगर तुम इसे हर दिन थोड़ा-थोड़ा खींचो, तो क्या यह जल्दी बढ़ेगा?"

शिष्य ने सोचा और कहा, "नहीं, इससे भी यह कमजोर हो जाएगा और शायद मर ही जाएगा।"

गुरु ने मुस्कुराया और दूसरे शिष्य से पूछा, "तो बताओ, हम इसे कैसे बड़ा करें?"

दूसरे शिष्य ने जवाब दिया, "गुरुजी, हमें इसे नियमित रूप से पानी देना होगा, इसे धूप में रखना होगा, और इसे बढ़ने के लिए समय देना होगा। यह अपने आप सही समय पर बढ़ेगा।"

गुरु ने सिर हिलाया और कहा, "यही आत्मज्ञान का रहस्य है। तुम इसे खींचकर या जल्दी करके प्राप्त नहीं कर सकते। इसे जबरदस्ती करने से तुम अपने आप को नुकसान पहुँचाओगे।"

"तुम्हें ध्यान, अभ्यास और सीखने के लिए लगातार काम करना होगा। तुम्हें अपने विचारों और भावनाओं को पोषण देना होगा, ठीक वैसे ही जैसे तुम इस पौधे को पानी देते हो।

लेकिन इसका फल तुम्हें तभी मिलेगा, जब सही समय आएगा। यह जबरदस्ती करने से नहीं, बल्कि स्वाभाविक रूप से होगा।"

९४.“ज़ेन मास्टर और बूढ़ा नाविक”

एक बूढ़ा ज़ेन मास्टर एक नाव पर यात्रा कर रहे थे। नाव का नाविक बहुत अभिमानी था और वह अपनी विशेषज्ञता का बहुत घमंड करता था। उसने मास्टर से पूछा, "गुरुजी, क्या आप दर्शनशास्त्र जानते हैं?"

मास्टर ने कहा, "नहीं, मैं नहीं जानता।"

नाविक ने उपहास करते हुए कहा, "तो आपका जीवन का एक-चौथाई हिस्सा बर्बाद हो गया।"
कुछ देर बाद, नाविक ने पूछा, "क्या आप ज्योतिष जानते हैं?"

मास्टर ने फिर कहा, "नहीं, मैं नहीं जानता।"

नाविक ने और भी जोर से हँसते हुए कहा, "तो आपका जीवन का आधा हिस्सा बर्बाद हो गया।"

थोड़ी देर बाद, मौसम बिगड़ गया और एक भयानक तूफान आ गया। नाव हिलने लगी और नाविक घबरा गया। उसने मास्टर से पूछा, "गुरुजी, क्या आप तैरना जानते हैं?"

मास्टर ने शांति से जवाब दिया, "नहीं, मैं नहीं जानता।"

नाविक भयभीत होकर बोला, "तो आपका पूरा जीवन बर्बाद हो गया!"

९५.“ज़ेन मास्टर और बूढ़ा कुआँ”

एक ज़ेन मास्टर अपने शिष्य के साथ यात्रा कर रहे थे। वे एक सूखे कुएँ के पास से गुज़रे, जो बहुत पुराना और गहरा था।

शिष्य ने कुएँ की तरफ़ देखा और पूछा, "गुरुजी, यह कुआँ इतना गहरा क्यों है? इसमें तो पानी भी नहीं है।"

मास्टर ने कहा, "यह कुआँ इसलिए इतना गहरा है क्योंकि इसने बहुतों की प्यास बुझाई है। इसने अपना सब कुछ दूसरों को दे दिया और अब खाली है।"

शिष्य ने सोचा, "क्या यह एक अच्छी बात है या बुरी?"

मास्टर ने शिष्य के चेहरे के भाव को देखकर कहा, "तुम क्या सोचते हो? अगर तुम एक नदी के पास जाते हो और वह तुमसे कहती है, 'मैं तुम्हें पानी दूंगी,' तो क्या तुम उसे अच्छा कहोगे? और अगर वह कहती है, 'मैं तुम्हें पानी नहीं दूंगी,' तो क्या तुम उसे बुरा कहोगे?"

शिष्य ने जवाब दिया, "नहीं, मैं नहीं कहूँगा। नदी तो नदी है, वह बस बहती है।"

मास्टर ने मुस्कुराते हुए कहा, "ठीक उसी तरह, कुआँ भी बस एक कुआँ है। उसने अपना काम किया और अब खाली है। यह न तो अच्छा है और न ही बुरा। यह बस है।"

९६.“राजा और रिंझाई”

यह कहानी संभवतः एक महान ज़ेन गुरु रिंझाई के बारे में है। एक बार की बात है, एक राजा को साधुओं के जीवन के बारे में जानने की बहुत इच्छा हुई। वह एक बड़े आश्रम में गए जहाँ पाँच सौ भिक्षु रहते थे।

वहां रिंझाई नाम के एक साधु रहते थे। उन्होंने राजा को पूरा आश्रम दिखाया। उन्होंने एक-एक करके आश्रम के सभी स्थानों के बारे में बताया—जहाँ साधु भोजन करते थे, जहाँ वे रहते थे, और जहाँ वे अध्ययन करते थे।

जैसे ही वे आश्रम के बीच में स्थित एक बहुत ही सुंदर और भव्य भवन के पास पहुँचे, राजा बार-बार पूछने लगे, "साधु यहाँ क्या करते हैं?"

रिंझाई ने हर बार राजा को यह कहकर टाल दिया, "इसके बारे में हम बाद में बात करेंगे।"

वे आगे बढ़े और राजा को बगीचा, पुस्तकालय और बाकी के स्थान दिखाए, लेकिन राजा का ध्यान बार-बार उस बीच वाले भवन पर जा रहा था। उन्होंने फिर से पूछा, "और वह जो बीच में भवन है, वहाँ साधु क्या करते हैं?"

रिंझाई ने राजा से धैर्य रखने को कहा और बोले, "थोड़ा रुकिए, इस बारे में हम बाद में बात करेंगे।"

जब पूरा आश्रम घूम लेने के बाद राजा वापस जाने लगे, तो उन्होंने फिर से वही सवाल दोहराया, "वह बीच का भवन छूट गया, वहाँ साधु क्या करते हैं?"

तब रिंझाई ने राजा को बताया, "वहाँ साधु कुछ नहीं करते। वे अपने 'न करने' की अवस्था में होते हैं।"

उन्होंने समझाया कि ध्यान-कक्षों में भी साधु अपने 'न करने' की स्थिति में ही रहते हैं। आश्रम के बाकी हिस्सों में सभी काम और क्रियाएँ होती हैं, लेकिन उस विशेष भवन में कोई भी काम नहीं होता। जब किसी साधु को सारी क्रियाएँ छोड़नी होती हैं, तो वह वहाँ चला जाता है और चुपचाप हो जाता है।

: 'न करना' भी एक गहरी अवस्था है, जहाँ मन और आत्मा को सच्ची शांति मिलती है।

९७.“बंधन और मुक्ति”

एक बार की बात है, एक नदी में एक मछली रहती थी। वह हमेशा बेचैन और दुखी रहती थी। उसे लगता था कि वह किसी अदृश्य बंधन में फंसी हुई है और उसे मुक्ति चाहिए।

एक दिन वह एक शांत और संतुष्ट कछुए से मिली। मछली ने कछुए से पूछा, "तुम इतने शांत कैसे रहते हो? मैं मुक्ति पाना चाहती हूँ, पर मुझे समझ नहीं आता कि यह क्या है।"

कछुए ने मुस्कुराते हुए कहा, "मुक्ति? यह तो बहुत सरल है। यह वही है, जो तुम अभी अनुभव कर रही हो।"

मछली को यह सुनकर और भी उलझन हुई। उसने सोचा, 'मैं तो अभी दुखी हूँ, यह मुक्ति कैसे हो सकती है?' उसने कहा, "मुझे कुछ समझ नहीं आया।"

कछुए ने कहा, "ठीक है, चलो एक प्रयोग करते हैं। तुम अपनी पूंछ को देखो।"

मछली ने अपनी पूंछ देखी और बोली, "हाँ, यह तो मेरी पूंछ है। मैं इसे हर समय महसूस करती हूँ। यह मेरे शरीर का हिस्सा है।"

कछुआ बोला, "क्या तुम इसे अपनी पीठ पर ढो रही हो? क्या यह तुम्हारे लिए एक बोझ है, जिसे तुम उतार फेंकना चाहती हो?"

मछली ने कहा, "नहीं, यह तो मेरा ही हिस्सा है। यह मेरे साथ है, पर यह बोझ नहीं है।"

कछुए ने गहरे अर्थ में मुस्कुराते हुए कहा, "बस यही तो मुक्ति है। तुम अपने शरीर को, अपने विचारों को और अपने जीवन को महसूस तो करती हो, लेकिन जब तक तुम उन्हें एक बोझ की तरह नहीं मानती, तब तक तुम मुक्त हो।"

९८.“कुत्ते की पूंछ”

एक बार एक व्यक्ति एक ज़ेन मास्टर के पास आया और बोला, "गुरुजी, मैं बहुत परेशान हूँ। मुझे लगता है कि मैं कोई प्रगति नहीं कर रहा हूँ। मैं ध्यान करता हूँ, साधना करता हूँ, लेकिन कुछ भी नहीं बदल रहा।"

ज़ेन मास्टर ने उस व्यक्ति की बात ध्यान से सुनी और कहा, "तुम्हारी समस्या बहुत सीधी है। क्या तुम्हारे पास कोई कुत्ता है?"

वह व्यक्ति हैरान हुआ, पर उसने जवाब दिया, "हाँ, मेरे पास एक कुत्ता है।"

मास्टर ने पूछा, "क्या तुमने कभी उस कुत्ते को अपनी पूंछ पकड़ने की कोशिश करते देखा है?"

उस व्यक्ति ने कहा, "हाँ, कई बार। वह बार-बार गोल-गोल घूमता है, पर अपनी पूंछ कभी नहीं पकड़ पाता।" मास्टर ने मुस्कुराते हुए कहा, "तो तुम भी वही कर रहे हो। तुम अपनी पूंछ पकड़ने की कोशिश कर रहे हो।"

व्यक्ति ने पूछा, "मेरा मतलब क्या है, गुरुजी?"

मास्टर ने समझाया, "तुम्हारी पूंछ तुम्हारा अहंकार है। तुम अपने अहंकार को ही पकड़ने की कोशिश कर रहे हो। तुम कह रहे हो कि 'मैं' कुछ बनना चाहता हूँ, 'मैं' प्रगति करना चाहता हूँ, 'मैं' ध्यान में सफल होना चाहता हूँ।

लेकिन जब तक 'मैं' यानी अहंकार मौजूद है, तब तक तुम कुछ भी पकड़ नहीं सकते।"

"जिस दिन तुम अपनी पूंछ को छोड़ दोगे, वह अपने आप तुम्हारे साथ हो जाएगी। तुम्हें उसे पकड़ने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। जब तुम 'कुछ होने' की कोशिश करना बंद कर दोगे, तब तुम हो जाओगे।"

९९.“तीन मछुआरे”

एक बार एक गुरु अपने तीन शिष्यों के साथ एक नदी के किनारे ध्यान कर रहे थे। अचानक, उन्होंने देखा कि नदी में तीन मछुआरे नाव में बैठे जाल डाल रहे हैं।

गुरु ने शिष्यों से कहा, "तुम लोग जाओ और उन मछुआरों से पूछो कि वे खुश हैं या नहीं।"
शिष्य गए और उन्होंने पहले मछुआरे से पूछा, "तुम खुश हो?"

मछुआरों ने कहा, "हाँ, मैं बहुत खुश हूँ। आज मैंने इतनी मछलियाँ पकड़ी हैं कि मेरा परिवार एक हफ्ते तक आराम से खा सकता है। अब मैं घर जा रहा हूँ।"

शिष्य वापस आए और गुरु को बताया। गुरु मुस्कुराए और कहा, "ठीक है, अब दूसरे से पूछो।"

वे दूसरे मछुआरे के पास गए। उसने कहा, "मैं खुश नहीं हूँ। मैंने पर्याप्त मछलियाँ नहीं पकड़ी हैं। मुझे और मछलियाँ पकड़नी होंगी ताकि मैं उन्हें बेचकर अपने बच्चों के लिए कपड़े खरीद सकूँ।"

शिष्य ने गुरु को यह बताया। गुरु ने कहा, "अब तीसरे से पूछो।"

तीसरे मछुआरे ने कहा, "मैं बहुत दुखी हूँ। आज मैंने बहुत मछलियाँ पकड़ी हैं, पर मैं सोच रहा हूँ कि अगर मैं एक और जाल डालूँ, तो कल के लिए भी मछलियाँ पकड़ सकता हूँ।

अगर मैं दो नावें खरीद लूँ, तो और भी ज़्यादा मछलियाँ पकड़ सकता हूँ। अगर मैं एक बड़ी नाव खरीद लूँ, तो मैं समुद्र में जाकर बहुत अमीर बन सकता हूँ। मैं दुखी हूँ क्योंकि मेरे पास वो सब नहीं है।"

१००.“तीन चोर”

एक बार तीन चोर एक गाँव से भाग रहे थे, क्योंकि उन्होंने गाँव के सबसे अमीर आदमी का घर लूट लिया था। वे बहुत सारा सोना और गहने चुराकर जंगल में भाग रहे थे।

वे नदी के किनारे पहुँचे। चोरों का मुखिया, जो सबसे बूढ़ा था, ने अपने दोनों साथियों से कहा, "हम इस सोने को यहाँ नदी के किनारे छिपा देते हैं। फिर हम एक-एक करके नदी पार करेंगे और नदी पार करने के बाद मिलेंगे।"

दो चोर नदी पार करने लगे, लेकिन जब वे बीच नदी में पहुँचे, तो बूढ़े चोर ने अचानक एक तेज चाकू निकाला और पीछे से दोनों को मार दिया। बूढ़ा चोर हँसा और सोचा, "अब सारा सोना मेरा है।"

लेकिन जैसे ही वह किनारे पर पहुँचा, उसे एक और चोर मिला, जो जंगल में छिपा हुआ था। उस चोर ने बूढ़े चोर से कहा, "मुझे पता है कि तुम एक चोर हो, और तुम अपने दो साथियों को मारकर सारा सोना ले रहे हो।"

बूढ़ा चोर बहुत डर गया, क्योंकि वह अब अकेला था। तभी उस दूसरे चोर ने एक और तेज चाकू निकाला और बूढ़े चोर को मार दिया। दूसरा चोर भी हँसा और बोला, "अब सारा सोना मेरा है।"

वह चोर नदी के किनारे पर खड़ा था, सोच रहा था कि वह अब बहुत अमीर हो गया है। तभी उसे एक और आदमी मिला। वह आदमी कोई चोर नहीं था, बल्कि एक भिक्षु था जो जंगल में अपनी साधना कर रहा था। भिक्षु ने चोर से पूछा, "तुम कौन हो?"

चोर ने कहा, "मैं एक चोर हूँ। मैंने तीन चोरों को मारकर सारा सोना ले लिया है।" भिक्षु ने मुस्कुराते हुए कहा, "लेकिन तुमने तो सिर्फ़ एक ही चोर को मारा है।" चोर हैरान हो गया और बोला, "नहीं, मैंने तीन चोरों को मारा है।"

भिक्षु ने कहा, "नहीं, तुमने केवल एक ही चोर को मारा है। बाकी दो को तो पहले ही मर चुके थे। वे तो मर चुके थे क्योंकि वे सोने को लेकर भाग रहे थे। तुमने उन्हें मारकर उनकी इच्छा को मार दिया। तुम भी मरोगे क्योंकि तुम सोने को लेकर भाग रहे हो।"